TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178097
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—557—13-7-71—3,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H928.91431 S96H Accession No. P.G. H1145

Author हरिराय

Title सूरदास की वार्ता

This book should be returned on or before the date last marked below.

ब्रज-साहित्य-माला सं० ५ आलोचना व निबन्ध

गो० श्री हरिराय जी कृत

सूरदास की वार्ता

★

सं० १७५२ की प्रति के आधार पर सूरदास का प्राचीन जीवन-वृत्तांत,
सूरदास की संस्कृत वार्ता तथा ब्रजभाषा गद्य का विकास
और ह्रास के परिशिष्टों सहित

संपादक :

प्रभुदयाल मीतल

प्रकाशक :

अग्रवाल प्रेस, मथुरा.

प्रथम संस्करण] मूल्य १॥) [सं० २००८ वि०

विषय-सूची

★

विषय		पृष्ठ संख्या
(१)	प्रारंभिक कथन	
	जन्मांधता, गृह-त्याग, आरंभिक जीवन, वैराग्य और गऊघाट का निवास	१
(२)	प्रसंग १	
	श्री वल्लभाचार्य से भेंट, दीनता के पदों का गायन, पुष्टि संप्रदाय की दीक्षा, लीला के पदों की रचना और श्रीनाथ जी कीर्तन-सेवा	६
(३)	प्रसंग २	
	चौपड़ के खिलाड़ियों को उपदेश	२४
(४)	प्रसंग ३	
	अकबर बादशाह से भेंट ...	२७
(५)	प्रसंग ४	
	अकबर द्वारा सूरदास के पदों का संकलन	३३
(६)	प्रसंग ५	
	गोकुल में नवनीतप्रिय जी की कीर्तन	३४
(७)	प्रसंग ६	
	गोसाईं बालकों द्वारा सूरदास के ज्ञान-चक्षुओं की परीक्षा	३८
(८)	प्रसंग ७	
	श्रीनाथ जी की भक्त-वत्सलता	४१
(९)	प्रसंग ८	
	लोभी बनिया को उपदेश	४४
(१०)	प्रसंग ९	
	भगवदीयों का सत्संग	५१
(११)	प्रसंग १०	
	सवालाख पदों की पूर्ति	५३
(१२)	प्रसंग ११	
	देहावसान	५६
(१३)	परिशिष्ट	
	१. सूरदास की संस्कृत वार्ता	६६
	२. ब्रजभाषा गद्य का विकास और ह्रास	६७

सूरदास की वार्ता

वार्ताओं के संपादक और प्रचारक—

श्री हरिराय जी

[प्राकट्य सं० १६४७ : निर्वाण सं० १७७२]

★

प्राक्कथन्

★

भक्ति-भारती के अमर गायक महात्मा सूरदास ने अपनी रचनाओं में स्पष्ट रूप से अपने संबंध में प्रायः कुछ भी नहीं बतलाया है, अतः अंतःसाक्ष्य के रूप में सूर-चरित्र की प्रायः कोई महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध नहीं है। बहिःसाक्ष्य के रूप में उनके संबंध की जो थोड़ी-बहुत सामग्री प्राप्य है, उसमें पुष्टि संप्रदाय का वार्ता साहित्य मुख्य है। सूरदास के जीवन-वृत्तांत के संबंध में अब तक जो कुछ लिखा गया है, उसका मूलाधार यही वार्ता साहित्य है।

पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य में गो० श्री गोकुलनाथ जी कथित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' अत्यंत प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसकी संख्या ८१ की वार्ता सूरदास से संबंधित है। सूरदास पर लिखने वाले सभी विद्वानों ने उक्त वार्ता में वर्णित वृत्तांत का अनिवार्य रूप से उपयोग किया है। गोकुलनाथ जी कृत वार्ता में सूरदास का जीवन-वृत्तांत उस प्रसंग से आरंभ होता है, जब वे गऊ-घाट पर रहते हुए श्री बल्लभाचार्य जी की शरण में गये थे। उक्त वार्ता में सूरदास के माता-पिता, जन्म-स्थान, आरंभिक जीवन और उनकी जाति आदि के संबंध में कोई सूचना नहीं दी गई है। गोकुलनाथ जी के पौत्र श्री हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी कथित वार्ताओं का संकलन, संपादन और विशदीकरण किया था। उन्होंने अपनी खोज और विश्वसनीय साधनों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वार्ताओं के अनेक प्रसंगों की पूर्ति की थी और उनका स्पष्टीकरण करते हुए उनको विस्तार के साथ लिखा था। फलतः उन्होंने सूरदास विषयक मूल वार्ता का संपादन करते हुए उसके भी अनेक प्रसंगों की पूर्ति की थी और सूरदास के आरंभिक जीवन-वृत्तांत पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला था। गोकुल-नाथ जी कृत वार्ताओं के भाष्य स्वरूप हरिराय जी का यह स्पष्टीकरण अथवा विशदीकरण 'भाव' नाम से प्रसिद्ध है, और इस प्रकार विस्तार-प्राप्त उनकी वार्ताएँ भावना वाली, लीला-भावना वाली अथवा भाव प्रकाश वाली वार्ताएँ कहलाती हैं।

हिंदी जगत् गो० गोकुलनाथ जी और उनकी 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से जितना परिचित है, उतना श्री हरिराय जी और उनकी भावना वाली वार्ताओं से नहीं। यही कारण है कि सूरदास के आरंभिक जीवन-वृत्तांत के

लिए हिंदी के विद्वानों ने अधिकतर निराधार कल्पनाओं से काम लिया है। जब से हमने अपने 'सूर-निर्णय' और 'अष्टछाप-परिचय' नामक ग्रंथों में हरिराय जी कृत वार्ता के आधार पर सूरदास का पूर्ण जीवन-वृत्तांत उपस्थित किया है, तब से हिंदी जगत् में उक्त वार्ता के प्रति बड़ी उत्सुकता उत्पन्न हो गई है। हमें हर्ष है कि अब हम हरिराय जी कृत सूरदास की उक्त वार्ता को संपादित कर अपनी टिप्पणियों सहित प्रकाशित कर रहे हैं। इससे पाठकों को वार्ता साहित्य के प्रमुख संपादक और प्रधान प्रचारक श्री हरिराय जी के शब्दों में ही सूरदास का प्राचीन एवं प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत ज्ञात हो सकेगा।

सूरदास की प्रस्तुत वार्ता का आधार सं० १७५२ में लिपिबद्ध और गुजरात के सिद्धपुर-पाटन में प्राप्त 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' की वह हस्त लिखित प्रति* है, जिसे वार्ता साहित्य के विशेषज्ञ श्री द्वारकादास परीख ने खोज निकाली थी। लीला भावना वाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता की इतनी प्राचीन कोई अन्य प्रति अब तक उपलब्ध नहीं हुई है। साथ ही यह इसके रचयिता श्री हरिराय जी के जीवन-काल में ही लिपिबद्ध की गई है। इसलिए इस प्रति की महत्ता और प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है।

पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य के संबंध में हिंदी जगत् में बड़ा भ्रम फैला हुआ है, इसलिए इस वार्ता पुस्तक की प्रामाणिकता के संबंध में भी संदेह किया जा सकता है। हमने नवीन शोध के आधार पर अपने 'सूर-निर्णय' और 'अष्टछाप-परिचय' नामक ग्रंथों में इस विषय पर व्यापक प्रकाश डाला है, जिसके कारण इस प्रकार के संदेह के लिए अब कोई स्थान नहीं रहता। यहाँ पर स्थानाभाव से इस विषय पर पुनः लिखना संभव नहीं है। हमारा सूर-साहित्य के विद्वानों से निवेदन है कि जब तक वार्ताओं में वर्णित घटनाओं के विरुद्ध कोई प्रामाणिक आधार न मिले, तब तक उन्हें स्वीकार करने में उनको संकोच न करना चाहिए।

प्रस्तुत वार्ता के अंत में परिशिष्ट सं० १ के अंतर्गत संस्कृत भाषा में लिखी हुई सूरदास की वार्ता दी गई है। इस वार्ता के रचयिता श्रीनाथ देव का समय सं १७७५ से १८३० तक है। उन्होंने 'वार्ता मणिमाला' नाम से

---

* 'लीला भावना वाली चौरासी वैष्णव की वार्ता' की यह प्रति श्री द्वारकादास जी परीख द्वारा संपादित होकर अग्रवाल प्रेस, मथुरा द्वारा प्रकाशित हो चुकी है।

वार्ताओं के १२५ प्रसंगों का संस्कृत में कथन किया है, जो ३७०० श्लोकों में है। इस ग्रंथ की दो विशाल हस्त-प्रतियाँ काँकरौली विद्या विभाग में सुरक्षित हैं। इस संस्कृत वार्ता में प्रायः वे ही बातें लिखी गई हैं, जो इस वार्ता में हैं। अंतर केवल इतना है कि हरिराय जी ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है, किंतु संस्कृत वार्ता में उनको प्राच्य ब्राह्मण बतलाया गया है। प्राच्य ब्राह्मण से संस्कृत वार्ताकार का क्या अभिप्राय है, यह ज्ञात नहीं होता है। दूसरी बात यह है कि समस्त वार्ता साहित्य के अनुसार सूरदास ने गऊघाट पर श्री बल्लभाचार्य से दीक्षा प्राप्त की थी, किंतु संस्कृत वार्ताकार ने गऊघाट के बजाय अड़ैल का उल्लेख किया है। यह निश्चयपूर्वक संस्कृत वार्ताकार की भूल है। श्री हरिराय जी ने स्पष्ट रूप से सूरदास को जन्मांध लिखा है। हिंदी साहित्य के विद्वान सूरदास की जन्मांधता में संदेह करते हैं, किंतु उक्त संस्कृत वार्ता में सूरदास को जन्मांध ही लिखा गया है। ब्रजभाषा रचनाओं के आधार पर संस्कृत में लिखा जाना उस समय एक विशेष बात थी। इससे वार्ताओं का महत्व और उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। इस संस्कृत वार्ता के कारण भी सूरदास के वृत्तांत की प्रामाणिकता की पुष्टि होती है।

सूरदास के जीवन-वृत्तांत का मूलाधार होने के कारण इस वार्ता का ऐतिहासिक महत्व तो है ही, किंतु इसका भाषा संबंधी महत्व भी है। यह वार्ता सं० १७५२ में लिपिबद्ध की गई थी, अतः इससे उस काल के ब्रजभाषा गद्य का रूप ज्ञात होता है। हिंदी गद्य के इतिहास में इस समय ब्रजभाषा गद्य का कोई स्थान नहीं है, जब कि प्राचीन काल से अब तक ब्रजभाषा गद्य की क्रमबद्ध शृंखला मिलती है। जिस समय खड़ी बोली हिंदी गद्य को कोई जानता भी नहीं था, उस समय ही ब्रजभाषा गद्य का विशाल साहित्य बन चुका था। राजनैतिक तथा अन्य कारणों से ब्रजभाषा गद्य की वह प्राचीन धारा आगे चल कर सूख गई और उसके स्थान पर खड़ी बोली गद्य की धारा तीव्र गति से प्रवाहित होने लगी। आज के युग में ब्रजभाषा गद्य का कोई महत्व नहीं है; किंतु इसके विकास और ह्रास का ऐतिहासिक महत्व अवश्य है, जो इस पुस्तक के अंत में परिशिष्ट सं० २ के अंतर्गत बतलाया गया है। हमें आशा है कि हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में इस विषय पर विचार किया जावेगा।

अब इस वार्ता के संपादन के संबंध में भी दो शब्द कहना आवश्यक है। अब तक ब्रजभाषा ग्रंथों के संपादन की कोई सर्व सम्मत प्रणाली निश्चित नहीं हुई है। आजकल के विद्वान संपादक भी अपना परिश्रम बचाने के लिए ब्रजभाषा काव्य को उसी रूप में प्रकाशित कर देते हैं, जिस रूप

में वह उनको अपढ़ लिपिकारों की प्रतियों में प्राप्त होता है †। ब्रजभाषा काव्य के संपादन का एक उत्तम आदर्श स्वर्गीय श्री जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' ने प्रस्तुत किया था, किंतु ब्रजभाषा गद्य के संपादन का कोई भी आदर्श इस समय उपस्थित नहीं है। ब्रजभाषा साहित्य के धुरंधर विद्वान डा० धीरेन्द्र जी वर्मा ने अब से बहुत समय पूर्व मूल चौरासी वार्ता की आठ वार्ताएँ 'अष्टछाप' के नाम से प्रकाशित कराई थीं। विद्वद्वर वर्मा जी चाहते तो रत्नाकर जी की तरह ब्रजभाषा गद्य के संपादन का भी कोई उत्तम आदर्श उपस्थित कर सकते थे, किंतु उन्होंने इसका कोई 'प्रयास' नहीं किया §। वार्ता साहित्य के विशेषज्ञ श्री द्वारकादास जी परीख ने कई वार्ता ग्रंथों का संपादन किया है, किंतु उन्होंने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। जब हमारे अधिकारी विद्वान भी इस ओर से उदासीन हैं, तब औरों के लिए क्या कहा जाय! आजकल ब्रजभाषा ग्रंथों के प्रकाशन की अधिकाधिक आवश्यकता प्रतीत हो रही है, अतः उनको उचित रूप से संपादन करने की सर्वसम्मत प्रणाली अवश्य निश्चित होनी चाहिए।

पर्याप्त प्रतियों के अभाव में मूल पाठ में परिवर्तन करने से बचना एक बात है और अपढ़ लिपिकारों की अशुद्ध प्रतियों के आधार पर भ्रष्ट साहित्य प्रकाशित करना दूसरी बात है। ब्रजभाषा ग्रंथों की प्राचीन प्रतियाँ लिपिकारों की योग्यता, रुचि और परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की शैलियों में लिपिबद्ध मिलती हैं। हम जानते हैं कि वे लोग रचयिता के मूल पाठ की रक्षा करने अथवा अपने समय की ही कोई निश्चित लिपि-प्रणाली उपस्थित करने की ओर जागरूक नहीं थे। सच बात तो यह है कि ब्रजभाषा के ग्रंथ बड़ी ही असावधानी से लिपिबद्ध किये हुए मिलते हैं। उनमें एक ही प्रकार के शब्द भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न रूपों में लिखे हुए प्राप्त होते हैं। उनमें कभी-कभी लिपि की ऐसी भद्दी भूलें मिलती हैं, जिन्हें साधारण पाठक

---

† "अपनी ओर से पाठ शुद्ध करने की अनधिकार चेष्टा मैं नहीं कर सका हूँ। मैं जानता हूँ, अनेक स्थानों पर भाषा की अशुद्धियाँ एक दम पढ़ते ही स्पष्ट हो जाती हैं, परंतु उन्हें भी दूर करने का प्रयास मैंने नहीं किया।"
—"अष्टछाप-पदावली" (भूमिका)

§ "पर्याप्त हस्त लिखित प्रतियों अथवा छपे हुए संस्करणों के बिना किसी ग्रंथ के मूल को 'शुद्ध करने' अथवा 'संपादन करने' में मुझे विश्वास नहीं है, अतः इस ओर प्रयास ही नहीं किया गया है।"
—"अष्टछाप" (वक्तव्य)

भी पढ़ने ही समझ लेता है। ऐसी दशा में उक्त ग्रंथों को उसी रूप में प्रकाशित कर देना कहाँ तक उचित है, इसके विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। पर्याप्त प्रतियों के अभाव में भी भाषा की एकरूपता और साधारण अशुद्धियों की शुद्धि की ओर ध्यान दिया जा सकता है। भाषा संबंधी विशेष योग्यता के अभाव में हम ब्रजभाषा गद्य के संपादन का कोई उत्तम आदर्श उपस्थित करने में असमर्थ हैं, किंतु हमने प्रस्तुत वार्ता के संपादन में भाषा की अनेकरूपता और साधारण अशुद्धियों को दूर करने की चेष्टा अवश्य की है। पता नहीं हमारे विद्वान समालोचक हमारे संपादन के इस रूप को पसंद करेंगे या नहीं।

प्रस्तुत वार्ता में स्थान-स्थान पर सूरदास कृत अनेक पद आये हैं। जिस प्रति के आधार पर यह वार्ता प्रकाशित की गई है, उसमें उक्त पदों की आरंभिक पंक्तियाँ ही दी गई हैं, जिनके पढ़ने से पाठकों की तृप्ति नहीं होती है। हमने सूरसागर, कीर्तन-संग्रह तथा अन्य पुस्तकों में खोज कर समस्त पद पूरे प्रकाशित किये हैं। गोकुलनाथ जी कृत मूल वार्ता और इस वार्ता के प्रसंगों में जहाँ अंतर है, उन स्थलों का भी हमने स्पष्ट निर्देश कर दिया है। इस प्रकार यह वार्ता यथाशक्ति सुसंपादित रूप में प्रकाशित की जा रही है।

इस वार्ता का आधार, जैसा पहले बतलाया जा चुका है, सं० १७५२ में लिपिबद्ध और सिद्धपुर-पाटन में प्राप्त लीला भावना वाली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' है, जिसके हम स्वयं प्रकाशक हैं; और जिसके संपादक श्री द्वारकादास जी परीख भी हमारे आत्मीय जन हैं। इसलिए आभार-प्रदर्शन केवल शिष्टाचार की बात रह जाती है; फिर भी उक्त वार्ता पुस्तक का उपयोग करने के लिए हम श्री परीखजी के अनुगृहीत हैं।

अग्रवाल भवन, मथुरा
निर्जला एकादशी, सं. २००८

—प्रभुदयाल मीतल

सहायक ग्रंथों की सूची

★

संख्या	ग्रंथ	विवरण	रचयिता
१.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता ...	हस्त लिखित एवं मुद्रित ...	गोकुलनाथ जी के नाम से प्रसिद्ध
२.	लीला भावना वाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता	सं० १७५२ की प्रति ... अग्रवाल प्रेस, मथुरा	हरिराय जी, सं. द्वारकादास परीख
३.	अष्टछाप ...	वार्ता संग्रह ... रामनारायनलाल, प्रयाग	धीरेन्द्र वर्मा
४.	सूरसागर ...	नागरी प्रचारिणी सभा ... काशी	जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'
५.	कीर्तन-कुसुमाकर ...	अहमदाबाद ...	बसंतराम शास्त्री
६.	कीर्तन-संग्रह भाग १, २, ३ ...	अहमदाबाद ...	लल्लूभाई छगनलाल देसाई
७.	अष्टछाप-पदावली ...	हिंदी भवन, लाहौर ...	सोमनाथ गुप्त
८.	वार्ता मणिमाला ...	विद्या विभाग ... काँकरोली	मठेश श्रीनाथ देव
९.	अष्टछाप-परिचय ...	अग्रवाल प्रेस, मथुरा ...	प्रभुदयाल मीतल
१०.	सूर-निर्णय ...	अग्रवाल प्रेस, मथुरा ...	द्वारकादास परीख प्रभुदयाल मीतल
११.	हिंदी साहित्य का इतिहास ...	नागरी प्रचारिणी सभा... काशी	रामचंद्र शुक्ल
१२.	हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	रामनारायन लाल ... प्रयाग	रामकुमार वर्मा
१३.	हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास	गौतम बुकडिपो ... दिल्ली	चतुरसेन शास्त्री
१४.	हिंदी की गद्य शैली का विकास	नागरी प्रचारिणी सभा... काशी	जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
१५.	प्रेम सागर ...	नागरी प्रचारिणी सभा ... काशी	ब्रजरत्न दास
१६.	उर्दू का रहस्य ...	नागरी प्रचारिणीसभा ... काशी	चंद्रवली पांडेय

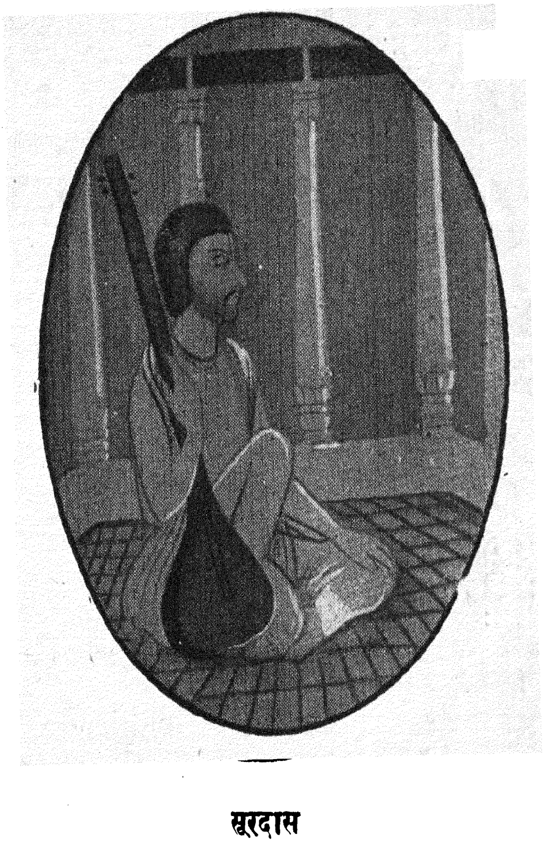

सूरदास

[जन्म सं० १५३५ :: देहावसान सं० १६४०]

★

गो० श्री हरिराय जी कृत

सूरदास की वार्ता

प्रारंभिक कथन

जन्मांधता, गृह-त्याग, आरंभिक जीवन, वैराग्य और गऊघाट का निवास

★

अब श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक सूरदास जी सारस्वत ब्राह्मण, दिल्ली के पास सीहीं गाँम है तहाँ रहते, तिनकी वार्ता कौ 'भाव' कहत हैं—

†[*सो सूरदास जी दिल्ली पास चार कोस उरे[1] में सीहीं‡ गाँम है, जहाँ राजा परीक्षित के बेटा जन्मेजय नें सर्प यज्ञ कियौ

† इस वार्ता में कोष्ठकों के अंदर का भाग श्री हरिराय जी कृत भावात्मक कथन है, और कोष्ठकों के बाहर का भाग गो० श्री गोकुलनाथ जी कथित मूल वार्ता का स्वयं श्री हरिराय जी कृत विस्तृत विवेचन है।

* आरंभ का थोड़ा सा भाग अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया गया है। उसमें श्री हरिराय जी ने सूरदास के लीला स्वरूपों का कथन किया है। उन्होंने बतलाया है कि सूरदास ठाकुर जी के अष्ट सखाओं में 'कृष्ण सखा' हैं और स्वामिनी जी की सखियों में 'चंपकलता सखी' हैं।

१. इस ओर

‡ सीहीं की स्थिति के संबंध में खोज कराने पर दिल्ली राष्ट्रीय संग्रहालय के अधीक्षक और सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल ने हमको सूचित किया कि दिल्ली-मथुरा सड़क पर बल्लभ गढ़ के निकट इस

हैं, सो ता गाँम में एक सारस्वत ब्राह्मण‡ के यहाँ प्रगटे† । सो सूरदास जी के जन्मत ही सों नेत्र नाँहीं‡ हैं, और नेत्रन कौ आकार गड़ेला[1] कछू नाँहीं, ऊपर भौंह मात्र हैं । सो या भाँति सों सूरदास जी कौ स्वरूप है ।

सो तीन बेटा वा सारस्वत ब्राह्मण के आगे के हते, और घर में बहोत निष्किंचन[2] हतो । वा सारस्वत ब्राह्मण के घर चौथे सूरदास जी प्रगटे । सो तब इनके नेत्र न देखे, आकार (हू)

..ाम का एक ग्राम है, जहाँ पर सूरदास के जन्म लेने को अनुश्रुति भी प्रचलित है । बल्लमगढ़ वर्तमान दिल्ली से प्रायः २० मील मथुरा की ओर है और सीहीं बल्लमगढ़ से प्रायः २ मील पर है । इस प्रकार वार्ता में लिखी हुई ४ कोस अर्थात् ८ मील की दूरी से इसकी संगति नहीं बैठती । इस संबंध में विशेष खोज कराने पर ज्ञात हुआ कि वर्तमान सीहीं एक प्राचीन ग्राम है और वहाँ पर जन्मेजय द्वारा सर्प-यज्ञ किये जाने की कथा भी प्रचलित है । वहाँ के निवासी एक विशिष्ट स्थान को सर्प-यज्ञ का स्थल बतलाते हैं । इस सीहीं के अतिरिक्त दिल्ली के आस-पास किसी अन्य सीहीं का कोई पता नहीं चला है । इसलिए वार्ता में लिखी हुई सीहीं यही ज्ञात होती है । दूरी के अंतर के संबंध में ऐसा अनुमान है, या तो दिल्ली नगर की अपेक्षा उस समय के दिल्ली राज्य की सीमा से सीहीं की दूरी बतलायी गयी है, अथवा वार्ता के लिपिकारों की भूल एवं असावधानी से ऐसा उल्लेख हो गया है ।

‡ श्री हरिराय जी ने स्पष्ट रूप से सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है । कुछ विद्वानों ने सूरदास के भाट, ढाढ़ी अथवा जाट जातीय होने की कल्पना की है, किंतु उनका मत अप्रामाणिक एवं निराधार है । 'सूर-निर्णय' पृष्ठ ५६-६१ और 'अष्टछाप-परिचय' पृष्ठ १२२-१२३ देखिये ।

† सं० १५३५ वैशाख शु० ५ मंगलवार को सूरदास का जन्म हुआ था। 'सूर-निर्णय' पृष्ठ ५१ और 'अष्टछाप-परिचय' पृष्ठ १२६ देखिये ।

‡ श्री हरिराय जी ने स्पष्ट रूप से सूरदास को जन्मांध बतलाया है । सूरदास का अंधत्व निर्विवाद है; किंतु वे जन्मांध थे, अथवा बाद में अंधे होगये थे, इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है । इसके विस्तृत विवेचन के लिए 'सूर-निर्णय' पृष्ठ ६१ से ७६ तक और 'अष्टछाप-परिचय' पृ० १२३ देखिये ।

१. गढ़ा २. दारिद्र्य

नाँहीं । सो या प्रकार देखिकै वा ब्राह्मण नें अपने मन में बहौत सोच कियौ और दुःख पायौ । जो देखो— एक तौ विधाता नें हमकों निष्कंचन कियौ, और दूसरें घर में ऐसौ पुत्र जनम्यौ । जो अब याकी कौन तौ टहल करैगो और कौन याकी लाठी पकरैगो ! सो या प्रकार ब्राह्मण नें अपने मन में बहौत दुःख पायौ । सो काहे तें—जो जन्मे पाछै नेत्र जाँय तिनकों आँधरा कहियै, सूर न कहियै; और ये तौ सूर हैं । सो माता पिता घर के सब कोई इनसों प्रीति करें नाँहीं । जानें, जो नेत्र बिना कौ पुत्र कहा ! तासों इनसों कोई बोलतो नाँहीं ।

सो ऐसें करत सूरदास जी बरस छै के भये । तब पिता कों वा गाँम के एक द्रव्यपात्र छत्री जजमान नें दोय मौहोर दान में दीनीं । तब वोह ब्राह्मण उन मोहोरन कों लैकै अपने घर आयौ, और अपने मन में बहोत प्रसन्न भयो, और स्त्री तथा घर में देह संबंधी बेटा-बेटी हते सो तिन सबन सों कही जो भगवान नें दोय मोहोर दीनीं हैं, सो काल्हि[१] इनकों बटाय कै सीधो-सामान लाऊँगो । तातें अपने घर में दोय-चार महीना कौ काम चलैगो । सो या प्रकार सबन कों वे दोय मोहोर दिखाईं । ता पाछै रात्रि कों एक कपड़ा में बाँधिकै ताक[२] में धरिकै सोयौ । तब रात्रि कों दोय मोहोरन कों मूसा[३] लै गये । सो घर की छातन[४] में भिल्ले[५] में धर दीनीं । तब मवारे[६] उठिकै देखै तौ मोहोर नाँहीं हैं ।

सो तब तौ सूरदास के माता—पिता छाती कूटन लागे, और रोवन लागे और अपने मन में अति कलेस[७] करन लागे । सो वा दिन खान-पान नाँहीं कियौ । सो या भाँति सों घनौ

१. कल २. आला ३. चूहे ४. छत
५. बिल ६. प्रातःकाल ७. क्लेश

बिलाप करन लागे। सो देखिकै सूरदास जी माता-पिता सों बोले—जो तुम ऐसौ दुःख बिलाप क्यों करत हो? जो भगवान कौ भजन सुमिरन करो, तासों सब भलौ होय। सो या भाँति सूरदास उनसों बोले। तब माता-पिता नें सूरदास सों कही—जो तू ऐसी घड़ी कौ सूर जनम्यौ है, सो हमकों वाही दिन सों दुःख ही में जनम बीतत है। जो हमकों काहू दिन सुख नाँहीं भयौ, और हमकों भर पेट अन्न हू नाँहीं मिलत है। जो श्री भगवान नें हमकों दोय मोहोर दीनीं हतीं, सोहू योंहीं गई। तब सूरदास जी बोले—जो तुम मोकों घर में न राखो तो मैं अबही तिहारी[1] मोहोर बताय देउँ। पर पाछें मोकों घर में राखियो मत, और तुम मेरे पीछें परियो मत। तब यह सुनिकै मात-पिता नें सूरदास सों कह्यौ—जो और हमकों कहा चहियत है! जो तू हमकों मोहोर बताय देय, और हमारी मोहोर पावैं, फेर तेरे मन में आवै तहाँ तू जाइयो। हम तोकों बरजेंगे[2] नाँहीं। तब सूरदास बोले—जो छात में भिल्लौ है, सो भिल्ले के मोहोंड़े[3] पर धरी हैं। तब वोह ब्राह्मण खोदिकै मोहोर पाये।

तब सूरदास जी घर तें चलन लागे। सो माता-पिता कों मोह उत्पन्न भयौ। जो देखो— या सूरदास कौ सगुन[4] बहोत आछौ[5] भयो। याके कहे प्रमान हमकों तुरत ही मोहोर मिली हैं। सो यह बिचारिकै माता-पिता नें सूरदास जी सों कह्यौ— जो सूरदास! अब तुम घर तें क्यों जात हो? अब तो ये मोहोर पाय गई हैं, तातें जहाँ ताँईं[6] ये मोहोरन कौ अनाज रहै, तहाँ ताँईं तुम हू खावो, पाछें जहाँ जानौ होय तहाँ तुम जैयो। तब सूरदास बोले—जो मोकों अब तुम घर में मत राखो। जो मोकों

१. तुम्हारी २. निषेध करेंगे ३. मुँह ४. शकुन
५. अच्छा ६. तक

घर में राखोगे तो तिहारी मोहोर फेर जाँयगीं और तुम दुःख पावोगे। यह सुनिकै मात-पिता कछु बोले नाँहीं।

और सूरदास जी तो हाथ में एक लाठी लैकै घर सों निकसे। सो सीहीं तें चले, सो चार कोस ऊपर एक गाँम हतो, तहाँ एक तलाब गाँम बाहर हतो, सो वहाँ एक पीपर के वृक्ष नीचै सूरदास जी आय बैठे, और वा तलाब कौ जल पियो। तहाँ दोय-चार घड़ी दिन पाछिलो रह्यौ हतो, तब ता गाँम को ब्राह्मण जमींदार तहाँ आयकै सूरदास जी कों पहचानकै कहन लाग्यौ– जो मेरी दस गाय तीन दिन तें मिलत नाँहीं, कोई बतावै तो दो गाय वाकों दऊँ। तब सूरदास जी ने कही—जो मोकों तेरी गाय कहा करनी हैं! परंतु तू पूछत है तो तब कहत हूँ– जो यहाँ सों कोस ऊपर एक गाँम है। सो वा गाँम के जमींदार के मनुष्य रात्रि कों आयकै तेरी दस गाय लै गये। वा जमींदार के घर के भीतर एक दूसरो घर है, सो तहाँ जमींदार के घोड़ा बँधे हैं, सो उन घोड़ान के पास तेरी गाय बँधी हैं। तब वोह जमींदार दस आदमी संग लै जाय देखै तो गाय सब बँधी हैं। सो लै आयकै सूरदास जी सों कह्यो— जो सूरदास! तिहारे कहे प्रमान मेरी दस गाय पाय गई हैं, सो ये दोय तुम राखो।

तब सूरदास जी नें कही– जो मैं अपनो ही घर छोड़िकै श्री ठाकुर जी को आस्रय करिकै बैठो हूँ, सो मैं तेरी गाय काहे कों लेऊँ! तब वह जमींदार सूरदास कों बालक जानिकै सिक्षा की बात करन लाग्यो। जो अरे तू फलाने[१] सारस्वत कौ बेटा है, और नेत्र तेरे हैं नाँहीं, और कोऊ मनुष्य हू तेरे पास नाँहीं,

---

१. अमुक

सो तू अपने घर कों छोड़िकै रूठिकै यहाँ क्यों बैठ्यौ है ? नेत्र हैं नाँहीं, कैसे दिन कटेंगे ? तब सूरदास नें कह्यौ– जो मैं तेरे ऊपर तौ घर छोड़्यौ नाँहीं। मैं तौ नारायन के ऊपर घर छोड़्यौ है, सो वे सगरे[१] जगत कौ पालन करत हैं, सो मेरौ हू करेंगे। और जो होनहार होयगी, सो होयगी। तब जमींदार ने कही– मैं ब्राह्मण हौं, दार-रोटी मेरे घर भई हैं, कहै तौ लाऊँ ? तब सूरदास नें कही–जो मैं तौ गैल[२] की चली रोटी नाँहीं खात। तब वह जमींदार अपुने घर जाय पूरी कराय और दूध लै जाय, सूरदास कों जल भरि दैकै कह्यौ–जो सूरदास ! तुम कोई बात कौ दुःख मत पाइयो। जो जहाँ ताँई भगवान मोकों खायवे कों देयगौ, तहाँ ताँई यहाँ मैं तुमकों लाऊँगौ। और सवेरें या तलाब पर तथा गाँम में जहाँ कहोगे तहाँ छापरा[३] डार दऊँगौ। पाछें सवेरौ भयौ, तब वोह जमींदार नें आयकै कह्यौ– जो तिहारौ मन कहाँ रहिवे कौ है ? तब सूरदास नें कही– जो अब तौ याही तलाब पर पीपरा[४] नीचें कछुक दिन रहवे कौ मन है। तब वा जमींदार नें वहाँ एक झोंपड़ी छवाय दीनीं और टहल करिवे कूँ एक चाकर राखि दियौ। ता पाछें वा जमींदार नें दस-पाँच जने के आगे बात करी–जो फलाने कौ बेटा सूरदास बड़ौ ज्ञानी है। हमारी गाय खोय गई हतीं सो बताय दीनीं। सो वह सगुन में आछौ जानें है। सो मैं वाकों तलाब के ऊपर पीपर के नीचें झोंपरी छवाय, वाके पास एक चाकर राखि दियौ है, और नित्य पूरी, दही, दूध पठावत[५] हूँ। सो तासों काहू कों सगुन पूछनौ होय, तौ वाकूँ जाय कें पूछ आइयों।

यह सुनिकै सब लोग गाँम के आवन लागे। सो जो कोई पूछै, तिनकों सगुन बतावै सो होय। तब सूरदास की बड़ी

१. समस्त २. मार्ग ३. छप्पर ४. पीपल का वृक्ष ५. भेजता

पूजा चली; भीर लगी रहै। खान-पान भली भाँति सों आवन लाग्यो। सो तब कछुक दिन में सूरदास कों रहिवे के लिए एक बड़ो घर तलाब पर बनाय दियो, और वोह झोंपरी हू दूर कीनीं। और वस्त्र, द्रव्य, बहोत वैभव भेलो[1] भयो। सो सूरदास स्वामी कहवाये, बहोत मनुष्य इनके सेवक भये। जाके कंठी बाँधनी होय सो सूरदास को सेवक होय। सो सूरदास विरह‡ के पद सेवकन कों सुनावते। सो सब गायवे के बाजे को सरंजाम सब भेलो होय गयो।

या प्रकार सूरदास तलाब पै पीपर के वृक्ष के नीचें बरस अठारें के भये। सो एक दिन, रात्रि कों सोवत हते, ता समय सूरदास कों वैराग्य आयो। तब सूरदास जी अपने मनमें विचारे– जो देखो, मैं श्री भगवान के मिलन अर्थ वैराग्य करिकें घर सों निकस्यो हतो, सो यहाँ माया नें ग्रसि लियो। मोकूँ अपनो जस काहे कों बढ़ावनो हतो! जो मैं श्री प्रभु को जस बढ़ावतो तो आछो। और यामें मेरो बिगार भयो, तासों अब कब सवारो होय और मैं यहाँ से कूँच करूँ।

सो ऐसें करत सवारो भयो। तब एक सेवक कों पठाय माता–पिता कों बुलाय सब घर उनकों सौंप दियो। पाछें सूरदास एक वस्त्र पहिरकें लाठी लेकें उहाँ तें कूँच किये। सो तब जो सेवक माया के जंजाल में हते, सो संसार में लपटे और

---

‡ श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य होने के पूर्व तक सूरदास विरह, विनय आदि के पदों का गायन किया करते थे। वल्लभाचार्य जी के उपदेश और उनकी प्रेरणा से ही बाद में उन्होंने लीला-गायन के पदों की रचना की थी। इन पदों के कारण ही उनका इतना महत्व है। इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि विरह आदि के पद उनकी आरंभिक कृतियाँ हैं।

१. एकत्रित २. प्रातःकाल

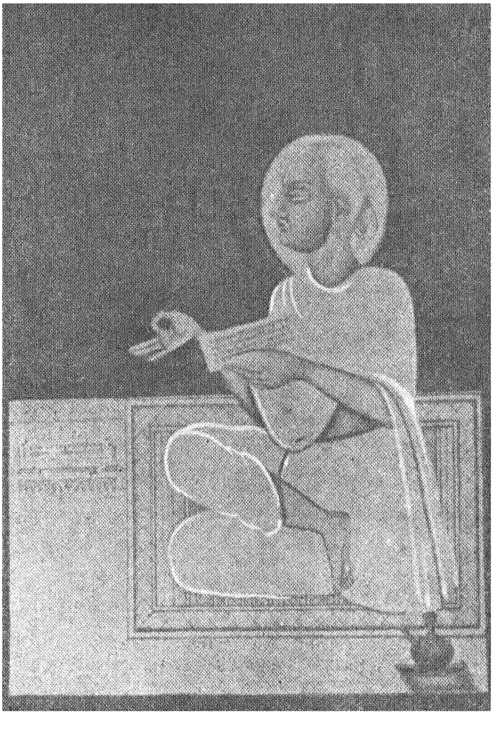

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी

[प्राकट्य सं० १५३५ : निर्वाण सं० १५८७]

★

प्रसंग १

श्री वल्लभाचार्य से भेंट, दीनता के पदों का गायन, पुष्टि संप्रदाय की दीक्षा, लीला के पदों की रचना और श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा

✦

†सो गऊघाट ऊपर सूरदास रहते। तब कितनेक दिन पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभु आपु अड़ेल* तें ब्रज कूँ पधारत हते। सो कछुक दिन में श्री आचार्य जी आप गऊघाट पधारे। ता समय श्री आचार्य जी के संग सेवकन कौ बहौत समाज हतौ। सो सब वैष्णव सहित श्री आचार्य जी आपु श्री जमुना जी में स्नान किये। ता पाछें संध्या वंदन कर पाक करन कों पधारे। और सेवक हू सब अपनी-अपनी रसोई करन लागे। ता समय एक सेवक सूरदास कौ तहाँ आयौ। सो वानें जायकै सूरदास कों खबर करी— जो सूरदास जी! आज इहाँ श्री बल्लभाचार्य जी पधारे हैं। जो जिननें कासी में तथा दच्छिन में मायावाद खंडन कियौ है, और भक्तिमार्ग स्थापन कियौ है।

तब यह सुनिकै सूरदास नें अपने सेवक सों कह्यौ—जो जब श्री बल्लभाचार्य जी भोजन करिकै निश्चिंतता सों गादी तकियान के ऊपर विराजैं, ता समय तू हमकों खबर करियो। जो मैं श्री बल्लभाचार्य जी के दरसन कों चलूँगौ। तब वोह

---

† यहाँ से गो० श्री गोकुलनाथ जी कथित मूल वार्ता का आरंभ है, किंतु श्री हरिराय जी ने उस मूल वार्ता का भी विस्तार किया है। इससे पूर्व का कथन श्री हरिराय जी कृत भावात्मक वार्ता का था।

* अड़ैल श्री बल्लभाचार्य जी का प्रधान निवास स्थान था। यह ग्राम प्रयाग के निकट जमुना नदी के दच्छिण तट पर है। अड़ैल के अतिरिक्त काशी के निकटवर्ती चरणाट नामक ग्राम भी बल्लभाचार्य जी का निवास स्थान था।

सेवक दूर आयकै बैठि रह्यौ । सो जब श्री आचार्य जी आपु भोजन करिकै गादी तकियान§ पै बिराजे, और सेवक हू सब आस-पास आय बैठे, तब वा सेवक नें जायकै खबर करी । तब सूरदास वाही समय अपने संग सगरे सेवकन कों लैकै श्री आचार्य जी के दरसन कों आये । सो तब आयकै श्री आचार्य जी कों साष्टांग दंडवत करी ।

तब श्री आचार्य जी श्री मुख सों कहे– जो सूर ! कछु भगवत जस वरनन करो । तब सूरदास नें श्री आचार्य जी कों दंडवत करि कह्यौ– जो महाराज ! जो आज्ञा । ता पाछै सूरदास नें यह पद श्री आचार्य जी के आगे गायौ । सो पद—

❀ राग सारंग ❀

† हरि, हौं सब पतितनि कौ नायक ।
को करि सकै बराबरि मेरी, और नहीं कोउ लायक ॥
जो प्रभु अजामील कौं दीन्हौ, सो पाटौ लिखि पाऊँ ।
तौ बिस्वास होइ मन मेरैं, औरौ पतित बुलाऊँ ॥
बचन बाहँ लै चलौं गाँठि दै, पाऊँ सुख अति भारी ।
यह मारग चौगुनौ चलाऊँ, तौ पूरौ ब्यौपारी ॥
यह सुनि जहाँ तहाँ तैं सिमिटैं आइ होइ इक ठौर ।
अब कैं तौ आपुन लै आयौ, बेर बहुर की और ॥

§ अपनी ब्रह्मचर्यावस्था में बल्लभाचार्य जी गद्दी पर नहीं बैठते थे । यहाँ पर 'गादी तकियान' के उल्लेख से सिद्ध है, कि उस समय तक उन्होंने गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लिया था । सं० १५६६ में अपनी पत्नी का द्विरागमन होने पर वे गृहस्थाश्रम के निर्वाहार्थ अड़ैल में रहने लगे थे ।

† मूल वार्ता और श्री हरिराय जी की वार्ता में यह पद राग धनाश्री में है । श्री हरिराय जी ने इस पद की आरंभिक टेक मात्र दी है, किंतु मूल वार्ता में पूरा पद दिया हुआ है । मूल वार्ता के पद का पाठ ठीक नहीं है, और उसमें दो पंक्तियाँ भी कम हैं, अतः यह पद श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा संपादित सूरसागर के पाठानुसार दिया गया है । उक्त सूरसागर में यह पद १४६ संख्या का है, और राग सारंग में है ।

होड़ा होड़ी मनहिं भावते किए पाप भरि पेट।
ते सब पतित पाय-तर डारौं, यहै हमारी भेंट॥
बहुत भरोसौ जानि तुम्हारौ, अघ कीन्हे भरि भाँड़ौ।
लीजै बेगि निबेरि तुरतहीं, 'सूर' पतित कौ टाँड़ौ॥

फेरि दूसरौ पद गायौ। सो पद—

❀ राग सारंग ❀

‡प्रभु, हौं सब पतितनि कौ टीकौ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ [illegible]
बधिक, अजामिल, गनिका तारी, और पूतना ही कौं।
मोहिं छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौं जी कौ?॥
कोउ न समरथ अघ करिवे कौं. खैंचि कहत हौं लीकौ।
मरियत लाज 'सूर' पतितनि मैं, मोहूँ तैं को नीकौ!॥

सो सुनिकै श्री आचार्य जी आपु सूरदास सों कहे—जो सूर ह्वै कै ऐसौ घिघियात[1] काहे कों है? सो तासों कछु भगवत लीला वरनन करि।

[†ताकौ आसय यह है—जो जीव श्री भगवान् सों बिछुर्यौ, सो तब तौ पतित भयौ। सो ताकौं बहौत कहा कहनौ, तासों भगवत लीला गावौ, जासों सुद्ध होइ।]

तब सूरदास नें श्री आचार्य जी सों बिनती कीनी—जो महाराज! में कछु भगवत लीला समुझत नाँहीं हूँ। तब श्री आचार्य जी श्रीमुख तें कहे— जो सूर! श्री जमुना जी में

‡ श्री हरिरायजी ने इस पद की आरंभिक पंक्ति दी है और इसके राग का भी उल्लेख नहीं किया है, किंतु मूल वार्ता में यह पद पूरा है और राग धनाश्री में है। यह पद श्री रत्नाकर जी के सूरसागर के पाठानुसार दिया गया है। सूरसागर में यह पद १३८ संख्या का है, और राग सारंग में है।

† कोष्टक की वार्ता भावात्मक है।

१. दीनता प्रकट करना।

स्नान करि आवो, जो हम समुझाय देंगे। तब सूरदास प्रसन्न होयकै श्री जमुनाजी में स्नान करिकै अपरस ही में श्री आचार्यजी पास आये। तब श्री आचार्य जी नें कृपा करिकै सूरदास कों नाम†‡ सुनायौ। ता पाछै समर्पन‡ करवायौ। पाछै आप दसम स्कंध की अनुक्रमनिका§ करी हती, सो सूरदास कों सुनाये‡।

[†अष्टाक्षर मंत्र सुनायौ तासों सूरदास के सगरे जनम के दोष मिटाये, और सात भक्ति भई। पाछै ब्रह्म संबंध करवायौ, तासों सात भक्ति और नवधा भक्ति की सिद्धि भई। सो रही प्रेमलक्षना, सो दसमस्कंध की अनुक्रमनिका सुनाये। तब संपूरन पुरुषोत्तम की लीला सूरदास के हृदय में स्थापन भई, सो प्रेमलक्षना भक्ति सिद्ध भई।]

---

† अष्टाक्षर मंत्र। इस मंत्र द्वारा पुष्टि सम्प्रदाय की दीक्षा दी जाती है।

‡ समर्पण अर्थात् आत्म निवेदन। पुष्टिमार्गीय भक्ति में इसका बड़ा महत्व है। संसार की अहंता-ममता त्याग कर परब्रह्म श्री कृष्ण के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण कर दीनतापूर्वक उनका अनुग्रह प्राप्त करने की चेष्टा को आत्म निवेदन अथवा ब्रह्मसंबंध कहते हैं। यह पुष्टिमार्गीय दीक्षा है, जिसे प्राप्त करने पर साधक को एक विशिष्ट प्रकार का रहन-सहन और आचार-विचार स्वीकार करना पड़ता है। आत्म समर्पण के मंत्र का आशय इस प्रकार है— "मैं कृष्ण की शरण में हूँ। सहस्रों वर्षों से मेरा श्री कृष्ण से वियोग हुआ है। वियोग जन्य ताप और क्लेश से मेरा आनंद तिरोहित हो गया है, अतः मैं भगवान् श्री कृष्ण को देह, इंद्रिय, प्राण, अंतःकरण और उनके धर्म, स्त्री, गृह, पुत्र, वित्त और आत्मा सब कुछ अर्पित करता हूँ। हे कृष्ण ! मैं आपका दास हूँ; मैं आपका ही हूँ।" ['अष्टछाप परिचय' पृ० ६०]

§ श्री बल्लभाचार्य जी रचित एक ग्रंथ

‡ सूरदास सं० १५६७ में श्री बल्लभाचार्य जी की शरण में आये थे। 'अष्टछाप-परिचय' पृ० १२७ और 'सूर-निर्णय' पृ० ८३ देखिये।

† कोष्टक की वार्ता भावात्मक है।

सो सगरी[1] श्रीसुबोधिनीजी† को ज्ञान श्री आचार्य जी नें सूरदास के हृदय में स्थापन कियो । तब भगवत लीला जस बरनन करिबे को सामर्थ भयो । तब अनुक्रमनिका तें सगरी लीला हृदय मे स्फुरी । सो कैसै जानियै—जो श्री आचार्य जी आप दसमस्कंध की सुबोधिनीजी में मंगलाचरन की प्रथम कारिका किये हैं, सो कारिका कहत हैं—

❀ श्लोक ❀

‡नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि शायिनम् ।
लक्ष्मीसहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥

सो या मंगलाचरन के अनुसार सूरदास नें श्री आचार्य जी के आगे यह पद करिकै गायो । सो पद—

---

† सुबोधिनी श्री बल्लभाचार्य जी रचित भागवत का विद्वतापूर्ण भाष्य है। यह बल्लभ संप्रदाय का प्रमुख धर्म ग्रंथ है। इसमें भागवत के केवल प्रथम, द्वितीय, तृतीय, दशम और एकादश स्कंधों का भाष्य किया गया है। श्री बल्लभाचार्य जी दीर्घायु न होने के कारण उक्त भाष्य को अपने जीवन में पूर्ण न कर सके थे। सुबोधिनी की व्यवस्थित रूप से रचना सूरदास को दीक्षित करने के कई वर्ष पश्चात् हुई थी, अतः सूरदास के दीक्षा-काल को कई विद्वानों ने सं० १५६७ के पश्चात् माना है। वास्तविक बात यह है कि श्री बल्लभाचार्य जी सूरदास को दीक्षित करने से पूर्व ही श्रीमद्भागवत की कथा कहा करते थे। भागवत के आशय को सुबोध करने के लिए वे श्रोताओं को उसका भाष्य भी समझाया करते थे। इस प्रकार सुबोधिनी की रचना होती रहती थी, किंतु वह व्यवस्थित रूप में कई वर्ष पश्चात् संकलित की गयी। यहाँ पर सुबोधिनी के उल्लेख से सूरदास के शरण-काल के संबंध में शंका नहीं होनी चाहिये।

‡ इस श्लोक द्वारा श्री बल्लभाचार्य जी ने दशमस्कंध सुबोधिनी का मंगलाचरण किया है। श्लोक का आशय इस प्रकार है—"हृदय रूपी शेष पर लीला रूपी क्षीरसागर में शयन करते हुए, लक्ष्मी तथा सहस्रों द्वारा सेवित जो कलानिधि हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।"

१. समस्त

※ राग देवगंधार ※

†चकई री, चलि चरन-सरोबर, जहाँ न प्रेम-वियोग।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिं कबहूँ, सोइ सायर सुख जोग ॥
जहाँ सनक-सिव हंस, मीन मुनि, नख रवि-प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि डर, गुंजत निगम सुबास ॥
जिहिं सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ कहाँ रहि कीजै ?
जहँ श्री सहस सहित नित क्रीड़त, सोभित 'सूरजदास'।
अब न सुहात विषय-रस-छीलर, वा समुद्र की आस ॥

सो यह पद दसमस्कंध की कारिका के अनुसार किये हैं।

श्लोक—'लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ।'

जैसे श्लोक में कह्यो है, तैसे ही सूरदास नें या पद में कही। जो—

" जहँ श्री सहस सहित नित क्रीड़त सोभित सूरजदास।"

सो यामें कहे। तामें जानि परी, जो सूरदास कों सगरी लीला श्री सुबोधिनी जी की स्फुरी।

सो सुनिकै श्री आचार्य जी बहौत प्रसन्न भये। और जाने, जो अब लीला कौ अभ्यास भयो। सो तब श्री आचार्य जी आप श्रीमुख तें सूरदास सों आज्ञा किये—जो सूर ! कछु नंदालय की लीला गावो। तब सूरदास नें नंद महोत्सव कौ कीर्तन बरनन करिकै गायौ। सो पद—

† मूल वार्ता और श्री हरिराय जी की वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति दी गयी है और इसका राग बिलावल लिखा गया है। वार्ता की कई प्रतियों में यह पद पूरा भी मिलता है, किंतु उनमें इसका पाठ ठीक नहीं है। अतः यह पूर्ण पद 'रत्नाकर' जी के सूरसागर से दिया गया है। सूरसागर में यह पद राग देवगंधार में है और ३३७ संख्या का है। इसकी सातवीं पंक्ति के पूर्वार्ध में वार्ता के अनुसार थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया गया है। सूरसागर का पाठ इस प्रकार है—'लछमी सहित होति नित क्रीड़ा'।

* राग आसावरी *

† ब्रज भयौ महरि कैं पूत, जब यह बात सुनी ।
सुनि आनंदे सब लोग, गोकुल गनक-गुनी ।।
अति पूरन पूरे पुन्य, रोपी सुथिर थुनी ।
ग्रह-लगन-नषत-पल सोधि, कीन्हीं बेद-धुनी ।।
सुनि धाईं सब ब्रजनारि, सहज सिंगार किये ।
तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिये ।।
कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिये ।
कर-कंकन, कंचन-थार, मंगल-साज लिये ।।
सुभ स्रवननि तरल तरौन, बैंनी सिथिल गुही ।
सिर बरषत सुमन सुदेस, मानौ मेघ फुही ।।
मुख मंडित रोरी रंग, सेंदुर माँग छुही ।
उर अंचल उड़त न जानि, सारी सुरंग सुही ।।
ते अपनें-अपनैं मेल, निकसीं भाँति भली ।
मनु लाल-मुनैयनि पाँति, पिंजरा तोरि चली ।।
गुन गावत मंगल-गीत, मिलि दस पाँच अली ।
मनु भोर भएं रवि देखि, फूलीं कमल-कली ।।
पिय-पहिलैं पहुँचीं जाइ, अति आनंद भरीं ।
लईं भीतर भवन बुलाइ, सब सिसु-पाइ परीं ।।
इक बदन उघारि निहारि, देहि असीस खरी ।
चिरजीवौ जसुदा-नंद, पूरन-काम करी ।।
धनि दिन है, धनि यह राति, धनि-धनि पहर-घरी ।
धनि-धन्य महरि की कोख, भाग-सुहाग भरी ।।
जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी ।
थिर थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी ।।
सुनि ग्वालनि गाइ बहोरि, बालक बोलि लए ।
गुहि गुंजा घसि बनधातु, अंगनि चित्र ठए ।।

† वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति ही दी गयी है और इसका राग देवगंधार लिखा गया है । यह पद रत्नाकर जी के सूरसागर से पूरा उद्धृत किया गया है । सूरसागर में इसका राग आसावरी है और यह ६४२ संख्या का है । इस पद की अंतिम पंक्ति में वार्ता के अनुसार थोड़ा सा परिवर्तन किया गया है । सूरसागर की पंक्ति इस प्रकार है—'सुनि सबकी यह गति सूर, जे हरि-चरन भजे ।'

सिर दधि-माखन के माट, गावत गीत नए ।
ढप-झाँझ-मृदंग बजाइ, सब नँद-भवन गए ॥
मिलि नाचत करत किलोल, छिरकत हरद-दही ।
मनु बरषत भादौं मास, नदी घृत-दूध बही ॥
जब जहाँ-जहाँ चित जाइ, कौतुक तहीं-तहीं ।
सब आनँद-मगन गुवाल, काहूँ बदत नहीं ॥
इक धाइ नंद पै जाइ, पुनि-पुनि पाइ परैं ।
इक आपु आपुहीं माहिं, हँसि-हँसि मोद भरैं ॥
इक अभरन लेहिं उतारि, देत न संक करैं ।
इक दधि-गोरोचन-दूब, सबकैं सीस धरैं ॥
तब न्हाय नंद भए ठाढ़, अरु कुस हाथ धरे ।
नांदीमुख पितर पुजाइ, अंतर सोच हरे ॥
घसि चंदन चारु मँगाइ, बिप्रनि तिलक करे ।
द्विज-गुरु-जन कौं पहिराइ, सब कैं पाइ परे ॥
तहँ गैयाँ गनी न जाहिं, तरुनी बच्छ बढ़ीं ।
जे चरहिं जमुन कैं तीर, दूनैं दूध चढ़ीं ॥
खुर ताँबैं, रूपैं पीठि, सोनैं सींग मढ़ीं ।
ते दीन्हीं द्विजनि अनेक, हरषि असीस पढ़ीं ॥
सब इष्ट मित्र अरु बंधु, हँसि-हँसि बोलि लिये ।
मथि मृगमद-मलय-कपूर, माथैं तिलक किये ॥
उर मनि-माला पहिराइ, बसन बिचित्र दिये ।
दै दान-मान-परिधान, पूरन-काम किये ॥
बंदीजन-मागध-सूत, आँगन-भौन भरे ।
ते बोलैं लै-लै नाउँ, नहिं हित कोउ बिसरे ॥
मनु बरषत मास अषाढ़, दादुर-मोर ररे ।
जिन जो जाँच्यौ सोइ दीन, अस नँदराइ ढरे ॥
तब अंबर और मँगाइ, सारी सुरँग चुनी ।
ते दीनी बधुनि बुलाइ, जैसी जाहि बनी ॥
ते निकसीं देति असीस, रुचि अपनी-अपनी ।
बहुरीं सब अति आनंद, निज गृह गोप-धनी ॥
पुर घर-घर भेरि-मृदंग, पटह-निसान बजे ।
बर बारनि बंदनवार, कंचन कलस सजे ॥
ता दिन तैं वै ब्रज लोग, सुख-संपति न तजे ।
सुनि 'सूर' सबन की यह गति, जो हरि-चरन भजे ॥

सो यह बड़ी बधाई गाई। सो श्री नंदराय जी के घर कों वरनन किये, तहाँ ताँई तौ श्री आचार्य जी आप सुने। ता पाछें गोपीजन के घर कों वरनन करने लागे, तब श्री आचार्य जी आपु श्रीमुख तें सूरदास सों कहे— जो "सुनि 'सूर' सबन की यह गति जो हरि–चरन भजे।" सो या भोग की तुक आपु कहिकै सूरदास कों चुप कर दिये।

[† सो यातें जो ब्रजभक्तन कों आनंद है, सो भगवदीयन के हृदय में अनुभव योग्य है। सो बाहिर प्रकास न होय तासों सूरदास कों थाँमि दिये। और सूरदास जी के हृदय में यह भी आयौ हतौ, जो मैंनें सेवक किये हैं, तिनकी कहा गति होयगी! तब श्री आचार्य जी नें कही— 'सुनि सूर! सबन की यह गति, जो हरि-चरन भजे।']

तब श्री आचार्य जी आप प्रसन्न होयकै कहे—जो मानों सूर नंदालय की लीला में निकट ही ठाड़े हैं, सो ऐसौ कीर्तन गायौ।

ता पाछें श्री आचार्य जी नें सूरदास कूँ 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम‡' सुनायौ। तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी। सो सूरदास ने प्रथम स्कंध श्री भागवत सों द्वादस स्कंध पर्यंत कीर्तन वरनन किये। तामें अनेक दानलीला, मान-लीला आदि वरनन किये हैं।

---

† कोष्ठकों की वार्ता भावात्मक कथन है।

‡ 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' श्रीवल्लभाचार्य जी रचित एक प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसमें उन्होंने भागवतोक्त श्रीहरि: के शुद्धाद्वैत सिद्धांत प्रतिपादक एक सहस्र नामों का कथन किया है। यह ग्रंथ भागवत का 'सार समुच्चय' रूप कहा गया है। इसकी व्यवस्थित रूप से रचना श्री वल्लभाचार्य जी ने सूरदास को दीक्षित करने के कई वर्ष पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी के लिए की थी। इस ग्रंथ की यथार्थ रचना का काल सं० १५८० के लगभग है। 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनाने के वार्ता के कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि

ता पाछें गऊघाट ऊपर श्री आचार्य जी आप तीन दिन रहे। सो तब सूरदास नें जितने सेवक किये हते, सो सब कों श्री आचार्य जी के सेवक कराये। ता पाछें श्री आचार्य जी आप ब्रज में पधारे। तब सूरदास हू श्री आचार्य जी के संग ब्रज में आयें।

सो प्रथम श्री आचार्य जी महाप्रभु आप गोकुल पधारे। तब श्री आचार्य जी ने श्रीमुख सो कह्यो—जो सूर! श्री गोकुल को दरसन करो‡। तब सूरदास जी नें श्री गोकुल कों साष्टांग

उस अवसर पर महाप्रभु जी ने सूरदास को समस्त 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुना दिया था। उस समय सूत्र रूप से उसकी कुछ बातें बतलायी होंगी। बाद में पूरी रचना कर लेने पर उन्होंने पूर्ण रूप से सूरदास को बतलाया होगा। तभी सूरदास ने श्री मद्भागवत के द्वादश स्कंधों के आधार पर अपने पदों की रचना की होगी। यदि शरण में लेते ही महाप्रभु जी द्वारा समस्त 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के सुनाने की बात मानी जाय, तब उसी समय सूरदास द्वारा समस्त भागवत के पदों की रचना भी माननी होगी, जो कि नितांत हास्यास्पद है। अतः सूरदास के शरण-काल और 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के रचना-काल की संगति मिलाना ठीक नहीं है।

† मूल वार्ता में यहाँ तक का कथन प्रसंग १ के अंतर्गत है। इसके आगे प्रसंग २ का आरंभ हो जाता है, किंतु श्री हरिराय जी की वार्ता में इसके आगे का कथन भी प्रसंग १ में ही चलता है।

‡ इस कथन से ज्ञात होता है कि उस समय सूरदास नेत्र विहीन थे। जो विद्वान वृद्धावस्था में सूरदास के अंधे होने की बात मानते हैं, उनका मत इस कथन के विरुद्ध पड़ता है। वार्ता के उल्लेख से ज्ञात होता है कि 'एक नेत्रों वाला व्यक्ति जिस प्रकार अंधे से कहता है, उसी प्रकार आचार्य जी ने सूरदास से गोकुल के दर्शन करने को कहा है। यदि सूरदास के नेत्र होते, तो वे आचार्य जी के सूचित करने से पूर्व ही गोकुल के दर्शन कर लेते। आचार्य जी की सूचना के अनुसार नेत्र विहीनता के कारण वे गोकुल के दर्शन तो कर ही नहीं सकते थे, अतः उन्होंने गोकुल को दंडवत कर अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित किया। उस समय सूरदास की आयु प्रायः ३१ वर्ष की थी, अतः वे वृद्धावस्था में ही नहीं, वरन् युवावस्था में भी नेत्र विहीन थे।'

['सूर-निर्णय' पृ० ७२]

दंडवत किये । सो दंडवत करत ही श्री गोकुल की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी ।

तब सूरदास जी अपने मन में बिचारे, जो श्री गोकुल की लीला मैं वरनन कैसै करौं । सो काहे तें– जो श्री आचार्य जी कौ मन श्री नवनीतप्रिय जी के स्वरूप के ऊपर आसक्त है, सो श्री नवनीतप्रिय जी कौ कीर्तन श्री गोकुल की बाललीला कौ वरनन, ऐसौ पद सूरदास जी नें गायौ । सो पद—

❋ राग बिलावल ❋

† सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए ॥
चारु कपोल, लोल लोचन, गौरोचन-तिलक दिए ।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुपगन, मादक मधुहिं पिए ॥
कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए ।
धन्य 'सूर' एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए ॥

सो यह पद सुनिकै श्री आचार्य जी आप सूरदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये । सो ता पाछें सूरदास नें और हू पद बाललीला के श्री आचार्य जी कों सुनाये । ता पाछें श्री आचार्य जी नें विचारयौ—जो श्री गोबर्धननाथजी कौ मंदिर तौ समरायौ[१] और सेवा हू कौ मंडान[२] भयौ । तातें सूरदास कूँ श्रीनाथ जी के पास राखियै । तब समै-समै के सगरे कीर्तन कौ मंडान और भयौ चाहियै । सो आगें वैष्णवजन सूरदास के पद गायकै कृतार्थ बहुत होंयगे ।

---

† श्री हरिराय की वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति ही है, किंतु मूल वार्ता में पूरा पद दिया हुआ है । मूल वार्ता के पद का पाठ ठीक नहीं है, अतः रत्नाकर जी कृत सूरसागर के पाठानुसार यह पद दिया गया है । सूरसागर में यह पद ७१७ संख्या का है । इस पद का राग सर्वत्र बिलावल लिखा गया है ।

१. ठीक किया २. प्रबंध, व्यवस्था

तब यह विचारि कै सूरदास कूँ संग लेकै श्री आचार्य जी आप श्री गोबर्धन पधारे । सो ऊपर पधारिकै श्रीनाथ जी के दरसन किये । तब श्री आचार्य जी आप श्रीमुख सों सूरदास सों कहे— जो सूर ! श्री गोबर्धननाथ जी के दरसन करो और कीर्तन गावो । तब सूरदास जी नें श्री गोबर्धननाथ जी के दरसन किये* । ता पाछै सूरदास जी नें प्रथम विज्ञप्ति कौ पद दैन्यता सहित गायौ । सो पद—

* राग धनाश्री *

† अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ॥
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द रसाल ।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असगत चाल ॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया कौ कटि फैंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल ।
'सूरदास' की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल ॥

सो यह पद सूरदास जी नें श्री आचार्य जी कों सुनायौ । सो सुन श्री आचार्य जी आप सूरदास सों कहे— जो सूरदास ! अब तो तिहारे मन में कछु अविद्या रही नाँहीं । जो तिहारी अविद्या तो प्रथम ही श्रीनाथ जी नें दूर कीनी है । तासों अब तुम भगवत लीला गावो, जामैं महात्म्य पूर्वक स्नेह होय ।

---

* नेत्र-विहीनता के कारण चर्म-चक्षुओं से नहीं, वरन् ज्ञान-चक्षुओं से सूरदास ने श्री बल्लभाचार्य जी के बतलाए हुए श्री गोवर्धननाथ जी के स्वरूप का दर्शन किया ।

† वार्ता में यह पद पूरा नहीं दिया गया है, अतः 'रत्नाकर' जी के सूरसागर में से लेकर यहाँ पर पूरा पद दिया गया है । सूरसागर में यह पद १९७ संख्या का है । इस पद का राग धनाश्री है ।

[‡ परंतु भगवदीय जितने हैं, सो तितनेन की यही बोली है, जो अपने कों हीन कहत हैं। सो यह भगवदीयन को लछन है। और जो कोई अपने कों आछौ कहै और आपुनी बड़ाई करै, सो भगवान तें सदा बहिर्मुख है।]

तब श्री आचार्य जी और श्री गोबर्धननाथ जी के आगें सूरदास जी नें महात्म्य स्नेह युक्त कीर्तन किये। सो पद—

* राग गौरी *

† कौन सुकृत इन ब्रज बासिन कौ, बदत बिरंच-सिव-सेष।
श्रीहरि जिनके हेत, प्रगटे मानुष वेष॥
जोति-रूप, जग-धाम, जगत-गुरु, जगत-पिता, जगदीस।
जोग-जग्य-जप-तप-व्रत दुर्लभ, सो गृह गोकुल-ईस॥
जाके उदर लोकत्रय, जल, थल, पंच तत्व चौखान।
बालक ह्वै झूलत ब्रज पलना, जसुमति-भवन निधान॥
इक-इक रोम बिराट कूप सम, अनंत कोटि ब्रह्मंड।
ताहि उछँग लिएँ मातु जसोदा, अपने निज भुज-दंड॥
रवि-ससि कोटि कला सम लोचन, त्रिविध तिमिर मिट जात।
अंजन दैन हेत सुत-चच्छुहिं, लै कर काजर मात॥
छिति मित त्रिपद करी करुनामय, बलि छल दियौ पतार।
देहरि उलँघि सकत नहिं सो प्रभु, खेलत नँद जू के द्वार॥
अनुदिन स्रवत सुधा रस पंचम चिंतामनि सी धेनु।
सो तजि जसुमति कौ पय पीवत, भक्तन कों सुख-दैन॥
वेद, वेदांत, उपनिषद षट् रस अरपत भुक्तत नाँहिं।
सो हरि ग्वाल-बाल-मंडल में, हँसि-हँसि जूठन खाँहिं॥
कमला-नायक, बैकुंठ-दायक, सुख-दुख जाके हाथ।
काँधैं कमरिया-लकुट, नगन पद बिहरत बन बछ साथ॥
करन, हरन, प्रभु दाता, भुक्ता, विस्वंभर जग जानि।
ताहि लगाइ माखन की चोरी, बाँध्यौ नंद जू की रानि॥

---

‡ भावात्मक कथन है।

† वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति ही दी गयी है। पूरा पद मूल चौरासी वार्ता की एक हस्त लिखित प्रति से दिया गया है। यह प्रति मथुरा संग्रहालय में है।

स्नान करि आवो, जो हम समुझाय देंगे । तब सूरदास प्रसन्न होयकै श्री जमुनाजी में स्नान करिकै अपरस ही में श्री आचार्यजी पास आये । तब श्री आचार्य जी नें कृपा करिकै सूरदास कों नाम†‡ सुनायौ । ता पाछै समर्पन‡ करवायौ । पाछै आप दसम स्कंध की अनुक्रमनिका§ करी हती, सो सूरदास कों सुनाये‡ ।

[+अष्टाक्षर मंत्र सुनायौ तासों सूरदास के सगरे जनम के दोष मिटाये, और सात भक्ति भई । पाछै ब्रह्म संबंध करवायौ, तासों सात भक्ति और नवधा भक्ति की सिद्धि भई । सो रही प्रेमलक्षना, सो दसमस्कंध की अनुक्रमनिका सुनाये । तब संपूरन पुरुषोत्तम की लीला सूरदास के हृदय में स्थापन भई, सो प्रेमलक्षना भक्ति सिद्ध भई ।]

---

† अष्टाक्षर मंत्र। इस मंत्र द्वारा पुष्टि सम्प्रदाय की दीक्षा दी जाती है ।

‡ समर्पण अर्थात् आत्म निवेदन। पुष्टिमार्गीय भक्ति में इसका बड़ा महत्व है । संसार की अहंता-ममता त्याग कर परब्रह्म श्री कृष्ण के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण कर दीनतापूर्वक उनका अनुग्रह प्राप्त करने की चेष्टा को आत्म निवेदन अथवा ब्रह्मसंबंध कहते हैं । यह पुष्टिमार्गीय दीक्षा है, जिसे प्राप्त करने पर साधक को एक विशिष्ट प्रकार का रहन-सहन और आचार-विचार स्वीकार करना पड़ता है । आत्म समर्पण के मंत्र का आशय इस प्रकार है— "मैं कृष्ण की शरण में हूँ । सहस्रों वर्षों से मेरा श्री कृष्ण से वियोग हुआ है । वियोग जन्य ताप और क्लेश से मेरा आनंद तिरोहित हो गया है, अतः मैं भगवान् श्री कृष्ण को देह, इंद्रिय, प्राण, अंतःकरण और उनके धर्म, स्त्री, गृह, पुत्र, वित्त और आत्मा सब कुछ अर्पित करता हूँ । हे कृष्ण ! मैं आपका दास हूँ; मैं आपका ही हूँ । " ['अष्टछाप परिचय' पृ० ६०]

§ श्री वल्लभाचार्य जी रचित एक ग्रंथ

‡ सूरदास सं० १५६७ में श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में आये थे । 'अष्टछाप-परिचय' पृ० १२७ और 'सूर-निर्णय' पृ० ८३ देखिये ।

+ कोष्टक की वार्ता भावात्मक है ।

सो सगरी[1] श्रीसुबोधिनीजी[†] को ज्ञान श्री आचार्य जी नें सूरदास के हृदय में स्थापन कियो । तब भगवत लीला जस वरनन करिवे को सामर्थ भयो । तब अनुक्रमनिका तें सगरी लीला हृदय में स्फुरी । सो कैसे जानियें—जो श्री आचार्य जी आप दसमस्कंध की सुबोधिनीजी में मंगलाचरन की प्रथम कारिका किये हैं, सो कारिका कहत हैं—

❀ श्लोक ❀

‡नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि शायिनम् ।
लक्ष्मीसहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥

सो या मंगलाचरन के अनुसार सूरदास नें श्री आचार्य जी के आगे यह पद करिके गायो । सो पद—

---

† सुबोधिनी श्री बल्लभाचार्य जी रचित भागवत का विद्वतापूर्ण भाष्य है । यह बल्लभ संप्रदाय का प्रमुख धर्म ग्रंथ है । इसमें भागवत के केवल प्रथम, द्वितीय, तृतीय, दशम और एकादश स्कंधों का भाष्य किया गया है । श्री बल्लभाचार्य जी दीर्घायु न होने के कारण उक्त भाष्य को अपने जीवन में पूर्ण न कर सके थे । सुबोधिनी की व्यवस्थित रूप से रचना सूरदास को दीक्षित करने के कई वर्ष पश्चात् हुई थी, अतः सूरदास के दीक्षा-काल को कई विद्वानों ने सं० १५६७ के पश्चात् माना है । वास्तविक बात यह है कि श्री बल्लभाचार्य जी सूरदास को दीक्षित करने से पूर्व ही श्रीमद्भागवत की कथा कहा करते थे । भागवत के आशय को सुबोध करने के लिए वे श्रोताओं को उसका भाष्य भी समझाया करते थे । इस प्रकार सुबोधिनी की रचना होती रहती थी, किंतु वह व्यवस्थित रूप में कई वर्ष पश्चात् संकलित की गयी । यहाँ पर सुबोधिनी के उल्लेख से सूरदास के शरण-काल के संबंध में शंका नहीं होनी चाहिये ।

‡ इस श्लोक द्वारा श्री बल्लभाचार्य जी ने दशमस्कंध सुबोधिनी का मंगलाचरण किया है । श्लोक का आशय इस प्रकार है—"हृदय रूपी शेष पर लीला रूपी क्षीरसागर में शयन करते हुए, लक्ष्मी तथा सहस्रों द्वारा सेवित जो कलानिधि हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ ।"

१. समस्त

❋ राग देवगंधार ❋

†चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम-वियोग।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिं कबहूँ, सोइ सायर सुख जोग ॥
जहाँ सनक-सिव हंस, मीन मुनि, नख रवि-प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि डर, गुंजत निगम सुबास ॥
जिहिं सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ कहाँ रहि कीजै ?
जहँ श्री सहस सहित नित क्रीड़त, सोभित 'सूरजदास'।
अब न सुहात विषय-रस-छीलर, वा समुद्र की आस ॥

सो यह पद दसमस्कंध की कारिका के अनुसार किये हैं।

श्लोक—'लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्।'

जैसें श्लोक में कह्यो है, तैसें ही सूरदास नें या पद में कही। जो—

"जहँ श्री सहस सहित नित क्रीड़त सोभित सूरजदास।"

सो यामें कहे। तामें जानि परी, जो सूरदास कों सगरी लीला श्री सुबोधिनी जी की स्फुरी।

सो सुनिकै श्री आचार्य जी बहोत प्रसन्न भये। और जाने, जो अब लीला को अभ्यास भयो। सो तब श्री आचार्य जी आप श्रीमुख तें सूरदास सों आज्ञा किये—जो सूर ! कछु नंदालय की लीला गावो। तब सूरदास नें नंद महोत्सव को कीर्तन वरनन करिकै गायो। सो पद—

---

† मूल वार्ता और श्री हरिराय जी की वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति दी गयी है और इसका राग बिलावल लिखा गया है। वार्ता की कई प्रतियों में यह पद पूरा भी मिलता है, किंतु उनमें इसका पाठ ठीक नहीं है। अतः यह पूर्ण पद 'रत्नाकर' जी के सूरसागर से दिया गया है। सूरसागर में यह पद राग देवगंधार में है और ३३७ संख्या का है। इसकी सातवीं पंक्ति के पूर्वार्ध में वार्ता के अनुसार थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया गया है। सूरसागर का पाठ इस प्रकार है—'लछमी सहित होति नित क्रीड़ा'।

* राग आसावरी *

† ब्रज भयौ महरि कै पूत, जब यह बात सुनी ।
सुनि आनंदे सब लोग, गोकुल गनक-गुनी ॥
अति पूरन पूरे पुन्य, रोपी सुथिर थुनी ।
ग्रह-लगन-नषत-पल सोधि, कीन्हीं बेद-धुनी ॥
सुनि धाईं सब ब्रजनारि, सहज सिंगार किये ।
तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिये ॥
कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिये ।
कर-कंकन, कंचन-थार, मंगल-साज लिये ॥
सुभ स्रवननि तरल तरौन, बैनी सिथिल गुही ।
सिर बरषत सुमन सुदेस, मानौ मेघ फुही ॥
मुख मंडित रोरी रंग, सेंदुर माँग छुही ।
उर अंचल उड़त न जानि, सारी सुरंग सुही ॥
ते अपनैं-अपनैं मेल, निकसीं भाँति भली ।
मनु लाल-मुनैयनि पाँति, पिंजरा तोरि चली ॥
गुन गावत मंगल-गीत, मिलि दस पाँच अली ।
मनु भोर भएँ रवि देखि, फूलीं कमल-कली ॥
पिय-पहिलैं पहुँचीं जाइ, अति आनंद भरीं ।
लईं भीतर भवन बुलाइ, सब सिसु-पाइ परीं ॥
इक बदन उघारि निहारि, देहिं असीस खरी ।
चिरजीवौ जसुदा-नंद, पूरन-काम करी ॥
धनि दिन है, धनि यह राति, धनि-धनि पहर-घरी ।
धनि-धन्य महरि की कोख, भाग-सुहाग भरी ॥
जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी ।
थिर थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी ॥
सुनि ग्वालनि गाइ बहोरि, बालक बोलि लए ।
गुहि गुंजा घसि बनधातु, अंगनि चित्र ठए ॥

† वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति ही दी गयी है और इसका राग देवगंधार लिखा गया है । यह पद रत्नाकर जी के सूरसागर से पूरा उद्धृत किया गया है । सूरसागर में इसका राग आसावरी है और यह ६४२ संख्या का है । इस पद की अंतिम पंक्ति में वार्ता के अनुसार थोड़ा सा परिवर्तन किया गया है । सूरसागर की पंक्ति इस प्रकार है—'सुनि सबकी यह गति सूर, जे हरि-चरन भजे ।'

सिर दधि-माखन के माट, गावत गीत नए ।
ढप-झाँझ-मृदंग बजाइ, सब नँद-भवन गए ।।
मिलि नाचत करत किलोल, छिरकत हरद-दही ।
मनु बरषत भादौं मास, नदी घृत-दूध बही ।।
जब जहाँ-जहाँ चित जाइ, कौतुक तहीं-तहीं ।
सब आनँद-मगन गुवाल, काहू बदत नहीं ।।
इक धाइ नंद पै जाइ, पुनि-पुनि पाइ परैं ।
इक आपु आपुहीं माहिं, हँसि-हँसि मोद भरैं ।।
इक अभरन लेहिं उतारि, देत न संक करैं ।
इक दधि-गोरोचन-दूब, सबकैं सीस धरैं ।।
तब न्हाय नंद भए ठाढ़, अरु कुस हाथ धरे ।
नांदीमुख पितर पुजाइ, अंतर सोच हरे ।।
घसि चंदन चारु मँगाइ, बिप्रनि तिलक करे ।
द्विज-गुरु-जन कौं पहिराइ, सब कैं पाइ परे ।।
तहँ गैयाँ गनी न जाहिं, तरुनी बच्छ बढ़ीं ।
जे चरहिं जमुन कैं तीर, दूनैं दूध चढ़ीं ।।
खुर ताँबैं, रूपैं पीठि, सोनैं सींग मढ़ीं ।
ते दीन्हीं द्विजनि अनेक, हरषि असीस पढ़ीं ।।
सब इष्ट मित्र अरु बंधु, हँसि-हँसि बोलि लिये ।
मथि मृगमद-मलय-कपूर, माथैं तिलक किये ।।
उर मनि-माला पहिराइ, बसन बिचित्र दिये ।
दै दान-मान-परिधान, पूरन-काम किये ।।
बंदीजन-मागध-सूत, आँगन-भौन भरे ।
ते बोलैं लै-लै नाउँ, नहिं हित कोउ बिसरे ।।
मनु बरषत मास अषाढ़, दादुर-मोर ररे ।
जिन जो जाँच्यौ सोइ दीन, अस नँदराइ ढरे ।।
तब अंबर और मँगाइ, सारी सुरँग चुनी ।
ते दीनी बधुनि बुलाइ, जैसी जाहि बनी ।।
ते निकसीं देति असीस, रुचि अपनी-अपनी ।
बहुरीं सब अति आनंद, निज गृह गोप-धनी ।।
पुर घर-घर भेरि-मृदंग, पटह-निसान बजे ।
बर बारनि बंदनवार, कंचन कलस सजे ।।
ता दिन तैं वै ब्रज लोग, सुख-संपति न तजे ।
सुनि 'सूर' सबन की यह गति, जो हरि-चरन भजे ।।

सो यह बड़ी बधाई गाई। सो श्री नंदराय जी के घर कौ वरनन किये, तहाँ ताँई तौ श्री आचार्य जी आप सुने। ता पाछै गोपीजन के घर कौ वरनन करने लागे, तब श्री आचार्य जी आपु श्रीमुख तें सूरदास सों कहे— जो "सुनि 'सूर' सबन की यह गति जो हरि-चरन भजे।" सो या भोग की तुक आपु कहिकै सूरदास कों चुप कर दिये।

[† सो यातें जो व्रजभक्तन कौ आनंद है, सो भगवदीयन के हृदय में अनुभव योग्य है। सो बाहिर प्रकास न होय तासों सूरदास कों थाँमि दिये। और सूरदास जी के हृदय में यह भी आयौ हतौ, जो मैंनें सेवक किये हैं, तिनकी कहा गति होयगी! तब श्री आचार्य जी नें कही— 'सुनि सूर! सबन की यह गति, जो हरि-चरन भजे।']

तब श्री आचार्य जी आप प्रसन्न होयकै कहे—जो मानों सूर नंदालय की लीला में निकट ही ठाड़े हैं, सो ऐसौ कीर्तन गायौ।

ता पाछै श्री आचार्य जी नें सूरदास कूँ 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम‡' सुनायौ। तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी। सो सूरदास ने प्रथम स्कंध श्री भागवत सों द्वादस स्कंध पर्यंत कीर्तन वरनन किये। तामें अनेक दानलीला, मान-लीला आदि वरनन किये हैं।

---

† कोष्ठकों की वार्ता भावात्मक कथन है।

‡ 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' श्रीवल्लभाचार्य जी रचित एक प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसमें उन्होंने भागवतोक्त श्रीहरिः के शुद्धाद्वैत सिद्धांत प्रतिपादक एक सहस्र नामों का कथन किया है। यह ग्रंथ भागवत का 'सार समुच्चय' रूप कहा गया है। इसकी व्यवस्थित रूप से रचना श्री वल्लभाचार्य जी ने सूरदास को दीक्षित करने के कई वर्ष पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी के लिए की थी। इस ग्रंथ की यथार्थ रचना का काल सं० १५८० के लगभग है। 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनाने के वार्ता के कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि

ता पाछैं गऊघाट ऊपर श्री आचार्य जी आप तीन दिन रहे। सो तब सूरदास नें जितने सेवक किये हते, सो सब कों श्री आचार्य जी के सेवक कराये। ता पाछैं श्री आचार्य जी आप ब्रज में पधारे। तब सूरदास हू श्री आचार्य जी के संग ब्रज में आयें†।

सो प्रथम श्री आचार्य जी महाप्रभु आप गोकुल पधारे। तब श्री आचार्य जी ने श्रीमुख सों कह्यौ—जो सूर! श्री गोकुल कौ दरसन करो‡। तब सूरदास जी नें श्री गोकुल कों साष्टांग

उस अवसर पर महाप्रभु जी ने सूरदास को समस्त 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुना दिया था। उस समय सूत्र रूप से उसकी कुछ बातें बतलायी होंगी। बाद में पूरी रचना कर लेने पर उन्होंने पूर्ण रूप से सूरदास को बतलाया होगा। तभी सूरदास ने श्री मद्भागवत के द्वादश स्कंधों के आधार पर अपने पदों की रचना की होगी। यदि शरण में लेते ही महाप्रभु जी द्वारा समस्त 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के सुनाने की बात मानी जाय, तब उसी समय सूरदास द्वारा समस्त भागवत के पदों की रचना भी माननी होगी, जो कि नितांत हास्यास्पद है। अतः सूरदास के शरण–काल और 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के रचना–काल की संगति मिलाना ठीक नहीं है।

† मूल वार्ता में यहाँ तक का कथन प्रसंग १ के अंतर्गत है। इसके आगे प्रसंग २ का आरंभ हो जाता है, किंतु श्री हरिराय जी की वार्ता में इसके आगे का कथन भी प्रसंग १ में ही चलता है।

‡ इस कथन से ज्ञात होता है कि उस समय सूरदास नेत्र विहीन थे। जो विद्वान वृद्धावस्था में सूरदास के अंधे होने की बात मानते हैं, उनका मत इस कथन के विरुद्ध पड़ता है। वार्ता के उल्लेख से ज्ञात होता है कि 'एक नेत्रों वाला व्यक्ति जिस प्रकार अंधे से कहता है, उसी प्रकार आचार्य जी ने सूरदास से गोकुल के दर्शन करने को कहा है। यदि सूरदास के नेत्र होते, तो वे आचार्य जी के सूचित करने से पूर्व ही गोकुल के दर्शन कर लेते। आचार्य जी की सूचना के अनुसार नेत्र विहीनता के कारण वे गोकुल के दर्शन तो कर ही नहीं सकते थे, अतः उन्होंने गोकुल को दंडवत कर अपना भक्ति–भाव प्रदर्शित किया। उस समय सूरदास की आयु प्रायः ३१ वर्ष की थी, अतः वे वृद्धावस्था में ही नहीं, वरन् युवावस्था में भी नेत्र विहीन थे।'

['सूर–निर्णय' पृ० ७२]

दंडवत किये । सो दंडवत करत ही श्री गोकुल की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी ।

तब सूरदास जी अपने मन में बिचारे, जो श्री गोकुल की लीला मैं वरनन कैसै करौं । सो काहे तें– जो श्री आचार्य जी कौ मन श्री नवनीतप्रिय जी के स्वरूप के ऊपर आसक्त है, सो श्री नवनीतप्रिय जी कौ कीर्तन श्री गोकुल की बाललीला कौ वरनन, ऐसौ पद सूरदास जी नें गायौ । सो पद—

❀ राग बिलावल ❀

† सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए ॥
चारु कपोल, लोल लोचन, गौरोचन-तिलक दिए ।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुपगन, मादक मधुहिं पिए ॥
कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए ।
धन्य 'सूर' एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए ॥

सो यह पद सुनिकै श्री आचार्य जी आप सूरदास के ऊपर बहौत प्रसन्न भये । सो ता पाछें सूरदास नें और हू पद बाललीला के श्री आचार्य जी कों सुनाये । ता पाछें श्री आचार्य जी नें विचारयौ—जो श्री गोबर्धननाथजी कौ मंदिर तौ समरायौ[1] और सेवा हू कौ मंडान[2] भयौ । तातें सूरदास कूँ श्रीनाथ जी के पास राखियै । तब समै-समै के सगरे कीर्तन कौ मंडान और भयौ चाहियै । सो आगे वैष्णवजन सूरदास के पद गायकै कृतार्थ बहुत होंयगे ।

---

† श्री हरिराय की वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति ही है, किंतु मूल वार्ता में पूरा पद दिया हुआ है । मूल वार्ता के पद का पाठ ठीक नहीं है, अतः रत्नाकर जी कृत सूरसागर के पाठानुसार यह पद दिया गया है । सूरसागर में यह पद ७१७ संख्या का है । इस पद का राग सर्वत्र बिलावल लिखा गया है ।

१. ठीक किया २. प्रबंध, व्यवस्था

तब यह विचारि कै सूरदास कूँ संग लैकै श्री आचार्य जी आप श्री गोबर्धन पधारे। सो ऊपर पधारिकै श्रीनाथ जी के दरसन किये। तब श्री आचार्य जी आपश्रीमुख सों सूरदास सों कहे— जो सूर! श्री गोबर्धननाथ जी के दरसन करो और कीर्तन गावो। तब सूरदास जी नें श्री गोबर्धननाथ जी के दरसन किये*। ता पाछै सूरदास जी नें प्रथम विज्ञप्ति कौ पद दैन्यता सहित गायौ। सो पद—

* राग धनाश्री *

† अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द रसाल।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया कौ कटि फैंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल।
'सूरदास' की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल॥

सो यह पद सूरदास जी नें श्री आचार्य जी कों सुनायौ। सो सुन श्री आचार्य जी आप सूरदास सों कहे— जो सूरदास! अब तो तिहारे मन में कछु अविद्या रही नाँहीं। जो तिहारी अविद्या तो प्रथम ही श्रीनाथ जी नें दूर कीनी है। तासों अब तुम भगवत लीला गावो, जामें महात्म्य पूर्वक स्नेह होय।

---

* नेत्र-विहीनता के कारण चर्म-चक्षुओं से नहीं, वरन् ज्ञान-चक्षुओं से सूरदास ने श्री वल्लभाचार्य जी के बतलाए हुए श्री गोवर्धननाथ जी के स्वरूप का दर्शन किया।

† वार्ता में यह पद पूरा नहीं दिया गया है, अतः 'रत्नाकर' जी के सूरसागर में से लेकर यहाँ पर पूरा पद दिया गया है। सूरसागर में यह पद १५७ संख्या का है। इस पद का राग धनाश्री है।

[‡ परंतु भगवदीय जितने हैं, सो तितनेन की यही बोली है, जो अपने कों हीन कहत हैं। सो यह भगवदीयन को लच्छन है। और जो कोई अपने कों आछो कहै और आपुनी बड़ाई करै, सो भगवान तें सदा बहिर्मुख है।]

तब श्री आचार्य जी और श्री गोबर्धननाथ जी के आगे सूरदास जी नें महात्म्य स्नेह युक्त कीर्तन किये। सो पद—

* राग गौरी *

† कौन सुकृत इन ब्रज बासिन कौ, बदत बिरंच-सिव-सेष।
श्रीहरि जिनके हेत, प्रगटे मानुष वेष॥
जोति-रूप, जग-धाम, जगत-गुरु, जगत-पिता, जगदीस।
जोग-जग्य-जप-तप-ब्रत दुर्लभ, सो गृह गोकुल-ईस॥
जाके उदर लोकत्रय, जल, थल, पंच तत्त्व चौखान।
बालक ह्वै झूलत ब्रज पलना, जसुमति-भवन निधान॥
इक-इक रोम बिराट कूप सम, अनंत कोटि ब्रह्मंड।
ताहि उछँग लिएँ मातु जसोदा, अपने निज भुज-दंड॥
रवि-ससि कोटि कला सम लोचन, त्रिविध तिमिर मिट जात।
अंजन दैन हेत सुत-चच्छुहिं, लै कर काजर मात॥
छिति मित त्रिपद करी करुनामय, बलि छल दियौ पतार।
देहरि उलँघि सकत नहिं सो प्रभु, खेलत नँद जू के द्वार॥
अनुदिन स्रवत सुधा रस पंचम चिंतामनि सी धेनु।
सो तजि जसुमति कौ पय पीवत, भक्तन कों सुख-दैन॥
वेद, वेदांत, उपनिषद षट् रस अरपत भुक्तत नाँहिं।
सो हरि ग्वाल-बाल-मंडल में, हँसि-हँसि जूठन खाँहिं॥
कमला-नायक, बैकुंठ-दायक, सुख-दुख जाके हाथ।
काँधैं कमरिया-लकुट, नगन पद बिहरत बन बछ साथ॥
करन, हरन, प्रभु दाता, भुक्ता, विस्वंभर जग जानि।
ताहि लगाइ माखन की चोरी, बाँध्यौ नंद जू की रानि॥

---

‡ भावात्मक कथन है।

† वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति ही दी गयी है। पूरा पद मूल चौरासी वार्ता की एक हस्त लिखित प्रति से दिया गया है। यह प्रति मथुरा संग्रहालय में है।

बकी, बकासुर, सकट, तृनाव्रत, अघ, धेनुक, वृषभास ।
कंस, केसि कों यह गति दीनी, राखे चरन निवास ॥
भक्त बछल हरि, पतित-उधारन, रहे सकल भरपूर ।
मारग रोकि पर्‌यौ हठ द्वारैं, पतित-सिरोमनि 'सूर' ॥

सो यह पद सुनिकै श्री आचार्य जी आप बहौत प्रसन्न भये ।

[† क्यों ? जो जैसौ श्री आचार्य जी पुष्टिमारग प्रगट किये, ताही अनुसार सूरदास जी नें यह कीर्तन गायौ । सो श्री आचार्य जी के मारग कौ कहा स्वरूप है ? जो महात्म्य ज्ञान पूर्वक दृढ़ स्नेह सो सर्वोपरि है, सो ठाकुर जी कों बहौत प्रिय है । परंतु जीव महात्म्य राखै । सो काहे तें ? जो महात्म्य-बिना अपराध कौ भय मिटजाय । तासों प्रथम दसा में महात्म्य स्नेह आवस्यक चाहियें । ब्रजभक्तन कौ स्नेह है सो सर्वोपरि है । तासों भक्तन के स्नेह के आगैं श्री ठाकुर कौ महात्म्य रहत नाँहीं । सो ठाकुर जी स्नेह के बस होय भक्तन के पाछै-पाछै डोलत हैं । सो जहाँ ताँई ऐसौ स्नेह नाँहीं होय, तहाँ ताँई महात्म्य राखनौ । सो जब स्नेह कौ नाँउ लैकै महात्म्य छोडै और श्री ठाकुरजी के आगें बैठै, बात करै और पीठि देय तौ भ्रष्ट होय जाय । तासों महात्म्य बिचारै और अपराध सों डरपै, तौ कृपा होय । और जब (सर्वोपरि) स्नेह होयगो, तब आप ही तें । स्नेह ऐसौ पदार्थ है, जो महात्म्य कूँ छुडाय देयगो । सो दसमस्कंध में बरनन है—

जो श्री भगवान बारंबार महात्म्य ब्रजभक्तन कों और श्री जसोदा जी कों दिखायौ । सो पूतना-बध करि, सकट-

† भावात्मक कथन है । इसका कुछ अंश मूल वार्ता में भी मिलता है, किंतु यह विस्तृत कथन श्री हरिराय जी कृत है ।

तृनावर्त करि, यमलार्जुन करि, बकासुर, धेनुक—कालीदमन करिकै लीला में महात्म्य दिखायौ। परंतु ब्रजभक्तन कौ स्नेह परम अद्‌भुत अनिर्वचनीय है। तासों महात्म्य तथा ईश्वरभाव न भयौ। सो ऐसौ स्नेह प्रभु कृपा करि दान करैं, ताकौ आप ही तें महात्म्य छूटि जायगो। और जाकौ स्नेह पति, पुत्र, स्त्री, कुटुंब में तथा द्रव्य में है, और अपने देह—सुख में है, सो भगवान कौ महात्म्य छोडि लौकिक रीति करै तौ श्री भगवान कौ अपराधी होय। तासों वेद मर्यादा सहित श्री ठाकुर जी के भय सहित सेवा करै, और सावधान रहै। सो यह श्री आचार्य जी महाप्रभुन के मारग की रीति है। तासों महात्म्य पूर्वक स्नेह करियै। और महात्म्य पूर्वक स्नेह यह जो समय—समय ऋतु अनुसार सेवा में सावधान रहै, ताकौ नाम महात्म्य पूर्वक स्नेह कहियै।]

पाछैं श्री आचार्य जी आपु कहे— जो सूर ! तुमको पुष्टिमारग कौ सिद्धांत फलित भयौ है। तासों अब तुम श्री गोवर्धनधर के यहाँ समय—समय के कीर्तन करो। ता समय सैन—भोग सरि चुक्यौ हतौ, सो तब मान के कीर्तन सूरदास नें गाये।

सो पाछैं या प्रकार सों कीर्तन सूरदास जी नें नित्य प्रातःकाल के जगायवे तें लैकै सैन पर्यंत के हजारन किये† ।

---

† सं० १५६८ के लगभग सूरदास ने श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करना आरंभ किया था। इसके पश्चात् अपने देहवसान काल सं० १६४० तक वे नियमित रूप से नित्य नये पदों की रचना द्वारा श्रीनाथ जी का कीर्तन करते रहे। इस ७२ वर्ष के सुदीर्घ काल में उन्होंने सहस्त्रों पदों की रचना की थी। वे समस्त पद 'सूरसागर' और उनकी अन्य कृतियों में संकलित हैं।

† प्रसंग १

चौपड़ के खिलाड़ियों को उपदेश

★

और एक समय सूरदास जी पाँच–सात वैष्णवन के संग मारग में चले जात हते। सो तहाँ दस–पाँच जने चौपड़ खेलत हते। सो चौपड़ के खेल में ऐसे लीन भये हते, सो मारग में गैल में काहू आवते जाते मनुष्य की कछू खबरि नाँहीं।

सो या प्रकार उनकों मगन देखिकै सूरदास जी नें अपने संग के वैष्णवन के आगै एक पद गायौ। और उन वैष्णवन सों सूरदास जी नें कह्यौ जो देखो—ये प्रानी मनुष्य जन्म बृथा खोवत हैं। जो श्री भगवान नें मनुष्य देह अपने भजन करिवे के लिए दीनी है। सो या देह सों ये प्रानी बृथा हाड़ कूटत है। सो यामें लौकिक में तो निंदा है, जो ये जुवारी हैं। और अलौकिक में भगवान सों बहिर्मुखता है। तासों भगवान नें तो ऐसी जिनकों मनुष्य–देह दीनी है, तिनकों ऐसी चौपड़ खेली चाहियै। सो ता समय सूरदास जी नें यह पद करिकै संग के वैष्णव हते तिनकों सुनायौ। सो पद—

※ राग केदारौ ※

मन तू समझ, स च, विचार।
भक्ति बिन भगवान दुरलभ, कहत निगम पुकार॥
साधु–संगति डारि फाँसा, फेरि रसना सार।
दाव अबकै परयौ पूरौ, उतरि पहिली पार॥
छाँड़ि सत्रह, सुन अठारे, पंच ही कों मार।
दूरि तें तज तीन काने, चमक चौक बिचार॥
काम–क्रोध–मद–लोभ भूल्यौ, ठग्यौ ठगिनी नार।
'सूर' हरि के पद भजन बिन, चल्यौ दोउ कर झार॥

---

† इस प्रसंग की कथा मूल वार्ता के प्रसंग ४ के अंतर्गत है।

सो सुनिकै उन वैष्णवन नें सूरदास सों कह्यौ—जो सूरदास जी ! या पद में समुझ नाँहीं परी है । तासों हमकों अर्थ करिकै समुझावो, सो तब समझ्यौ जाय । तब सूरदास जी कहे—

[‡ तीन वस्तु चौपड़ में चाहि ँ—समझ, सोच और विचार । सो ये तीन्यौ वस्तु भगवान के भजन में हू चाहिएँ । (क्यों ?) जो जैसै पहलै समझै तब चौपड़ खेलैगौ, सो तैसै ही भगवान कों जानैगौ, तौ भजन करैगौ । और चौपड़ में सोच होय जो—ऐसौ फाँसा परै, तौ मैं जीतूँ । सो तैसै ही या जीव कों काल कौ सोच होय, तब यह जीव प्रभु की सरन जाय । और (तीसरी वस्तु जो) विचार, सो यह जो विचारि कै गोट कों फाँसा के दाव कूँ चलै जो यहाँ नाँहीं मारी जायगी, इत्यादि । सो तैसै ही विचार वैष्णवन कों होय जो यह कार्य मैं करत हूँ सो आछौ है कै बुरौ है ? तब यह जीव बुरौ काम छोड़िकै भगवत धरम की चाल में चलै । और चौपड़ में फाँसा के दाव परैं, तब दोऊ ओर के मनुष्य पुकारत हैं । सो तैसै ही जगत में निगम जो वेद पुरान सो पुकारि कै कहत हैं, जो भक्ति बिना भगवान दुरलभ हैं, सो तासों कोटि साधन करो । और चौपड़ में दूसरौ संग मिलै तब चौपड़ खेली जाय, सो तैसै ही भगवान की भक्ति में भगवदीय वैष्णव की संगति होय, तब भक्ति बढ़ै । और चौपड़ खेलिवे वारे के मन में (जैसै) अपने दाव कौ सुमिरन रहत है, जो यह दाव परै तौ मैं जीतूँ, सो तैसै ही रसना सों यह जीव भगवत वार्ता में मन लगाय कै सब रस कौ सार रूप (ऐसौ भगवन्नाम) कह्यौ करै । और (जैसै) चौपड़ में सुंदर पूरौ दाव परै, तब गोट पार जाय, और तब उतरिकै घर में आवै, और मरिवे कौ भय मिटै । सो तैसै ही मनुष्य देह

‡ यह भावात्मक कथन है। इसका संक्षिप्त रूप मूल वार्ता में भी मिलता है।

संसार सों पार उतरिवे कौ पूरौ दाव बड़ी पुन्याई सों मिलै है, सो तौ या देह सों भगवदाश्रय करि संसार तें पार उतरि जाय। 'राखि सत्रै सुन अठारै' चौपड़ में सत्रै–अठारै बड़े दाव हैं। सो तैसै ही जगत में सब पुरान हैं, सो तिनही कों राखि। सुन अठारै जो श्री भागवत सुनन कों (और) पुरान हू कों धरि राखि। और पाँचों जो इंद्रिय, पंचपर्वा अविद्या है, सो इनकूँ मार। सो काहे तें ? जो शास्त्र के वचन हैं, जो—

पतंग–मातंग–कुरंग–भृंग–मीना हताः पंचभिरेव पंच।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते, यः सेवते पंचभिरेव पंच॥

१ पतंग–नेत्र विषय तें दीपक में परै। २ हाथी–स्पर्श विषय करि मरै। ३ कुरंग–स्रवन विषय तें मरै। ४ भृंग–गंध नासिका विषय तें मरै। ५ मीन–जिभ्या विषय तें मरै। सो एक–एक विषय तें मरि परें, तौ मनुष्य तौ पाँचन कौ सेवन करत है, सो निश्चै काल इनकों भच्छन करै।

तासों नाद पाँचौं मारि, सो जैसै चौपड़ में गोट मारत हैं। और चौपड़ में सब तें छोटौ दाव तीन काने हैं, सो कोऊ नाँहीं चाहत है। तैसै ही तू तीन–तामस, राजस, सात्त्विक माया के गुन हैं, सो सगरौ संसार सोई चौक है, सो यामें चतुराई सों डार। चतुराई यह, जो इनकों डारि पाछै इनकी ओर देखै मत। सो जैसै चौपड़ में सब की सुध बुध भूल जात है, सो सब ठग्यौ गयौ। सो तैसै काम–क्रोधादि जंजाल है, और स्त्री रूप भगवत माया है, सो यह सगरे जगत कों ठगैगी। सो जैसै चौपड़ खेलिकै हारिकै सब दोऊ हाथ झारिकै उठै, सो तैसै ही श्री ठाकुर जी के पदकमल के भजन बिना दोऊ हाथ झारिकै या मनुष्य नें देह खोई। जो कछु भलौ परोपकार संग नाँहीं कियौ। सो या प्रकार वैष्णव सुनिकै सूरदास के ऊपर बहौत प्रसन्न भये।]

प्रसंग ३

अकबर बादशाह सो भेंट

★

और सूरदास कों जब श्री आचार्य जी देखते तब कहते— जो आवो सूरसागर* ! सो ताको आसय यह है—जो समुद्र में सगरौ पदार्थ होत है, तैसे ही सूरदास नें सहस्रावधि पद किये हैं। तामें ज्ञान–वैराग्य के न्यारे–न्यारे भक्तिभेद, अनेक भगवत अवतार, सो तिन सबन की लीला कों बरनन कियो है।

पाछे उनके पद जहाँ तहाँ लोग सीखिकें गावन लागे। सो तब (एक समय) तानसेन नें एक पद सूरदास को सीखिकें अकबर बादसाह के आगे गायौ।

यह सुनि देसाधिपति अकबर नें कह्यो—जो ऐसे लच्छन वारे भक्तन सों मिलाप होय, तो कहा कहियै ? सो तानसेन नें कही–जो जिननें यह कीर्तन कियौ है, सो ब्रज में रहत हैं; और सूरदास जी उनकौ नाम है।

यह सुनि देसाधिपति के मन में आई, जो कोई उपाय करिकें सूरदास सों मिलियै। पाछे देसाधिपति दिल्ली तें आगरा आयो। तब अपने हलकारान सों कह्यो जो ब्रज में सूरदास जी श्रीनाथ जी के पद गावत हैं, सो तिनकी ठीक पारिकें मोकों श्रीमथुराजी में खबर दीजियो और यह बात सूरदास जानें नाँहीं।

तब उन हलकारान नें श्रीनाथजी द्वार में आयकें खबर काढ़ी। तब सुनी जो सूरदाज जी तो मथुराजी गये हैं। सो तब वे हलकारा श्री मथुरा में आयकें सूरदास कों नजर में राखे, जो या समय यहाँ बैठे हैं। तब उन हलकारान नें देसाधिपति कों खबर करी–जो अजी साहब ! सूरदास जी तो मथुराजी में हैं।

* यही नाम बाद में सूरदास की प्रमुख रचना का भी प्रसिद्ध हुआ।

तब सूरदास कूँ अकबर बादशाह ने दस–पाँच मनुष्य बुलायवे कों पठाये। सो सूरदास जी देसाधिपति के पास आये। तब देसाधिपति नें उनकों बहौत आदर सन्मान कियो। पाछें सूरदास जी सों देसाधिपति नें कह्यौ—जो सूरदास जी! तुमनें विष्नुपद† बहौत किये हैं, सो तुम मोकों कछु सुनावो।

तब सूरदास नें अकबर बादशाह आगें यह पद गायौ। सो पद—

* राग परज *

‡ मन रे, माधव सौं कर प्रीति।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तू, छाँड़ि सबै बिपरीति॥
भौंरा भोगी बन भ्रमै (रे) मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करै (पै) कमल बँधावै आप॥
सुनि परमिति प्रिय प्रेम की, (रे) चातक चितवन पारि।
घन-आसा सब दुख सहै, (पै) अनत न जाँचै बारि॥
देखौ करनी कमल की, (रे) कीन्हौं रवि सौं हेत।
प्रान तज्यौ, प्रेम न तज्यौ, (रे) सूख्यौ सलिल समेत॥
दीपक पीर न जानई, (रे) पावक परत पतंग।
तनु तौ तिहिं ज्वाला जर्‌यौ, (पै) चित न भयौ रस-भंग॥
मीन बियोग न सहि सकै, (रे) नीर न पूछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहिं, (रे) रति न घटै तन जात॥
परनि परेवा प्रेम की, (रे) चित लै चढ़त अकास।
तहँ चढ़ि तीय जो देखई, (रे) भू पर परत निसास॥
सुमिरि सनेह कुरंग कौ, (रे) स्रवननि राच्यौ राग।
धरि न सकत पग पछमनौ, (रे) सर सनमुख उर लाग॥
देखि जरनि जड़, नारि की, (रे) जरति प्रेत के संग।
चिता न चित फीकौ भयौ (रे) रची जु पिय के रंग॥
लोक-वेद बरजत सबै (रे) देखत नैननि त्रास।
चोर न चित चोरी तजै, (रे) सरबस सहै बिनास॥

† भक्त कवियों के गायन की एक विशिष्ट शैली।

‡ वार्ता की किसी प्रति में इस पद की आरंभिक पंक्ति और किसी में पूरा पद मिलता है। यह पद सूरसागर में ३२५ संख्या का है, जिसके पाठानुसार यह पद दिया गया है। पूरा पद 'सूरपच्चीसी' के नाम से प्रसिद्ध है।

सब रस कौ रस प्रेम है, (रे) बिजयी खेलै सार।
तन-मन-धन जोबन खसे (रे) तऊ न मानै हार॥
त जो रतन पायौ भलौ (रे) जान्यौ साधि न साज।
प्रेम-कथा अनुदित सुनै, (रे) तऊ न उपजै लाज॥
सदा सँघाती आपनौ, (रे) जिय कौ जीवन-प्रान।
सु तैं बिसारयौ सहजहीं, (रे) हरि, ईस्वर, भगवान॥
बेद, पुरान, सुमृति सबै (रे) सुर-नर सेवत जाहि।
महा मूढ़ अज्ञान मति, (रे) क्यौं न सँभारत ताहि॥
खग-मृग-मीन पतंग लौं (रे) मैं सोधे सब्र ठौर।
जल-थल-जीव जिते तिते, (रे) कहौं कहाँ लगि और॥
प्रभु पूरन पावन सखा, (रे) प्राननि हूँ कौ नाथ।
परम दयालु कृपालु है, (रे) जीवन जाके हाथ॥
गर्भ बास अति त्रास मैं, (रे) जहाँ न एकौ अंग।
सुनि सठ तेरौ प्रानपति, (रे) तहँउ न छाँड़यौ संग॥
दिन-राती पोषत रह्यौ, (रे) जैसे चोली पान।
वा दुख तैं ताहिं काढ़ि कै (रे) लै दीनौ पय-पान॥
जिन जड़ तैं चेतन कियौ, (रे) रचि गुन-तत्व विधान।
चरन, चिकुर कर नख दए, (रे) नयन, नासिका, कान॥
असन बसन बहु विधि दए, (रे) औसर औसर आनि।
मातु-पिता-भया मिले, (रे) नई रुचि नइ पहिचानि॥
सजन कुटुँब परिजन बढ़े (रे) सुत - दारा - धन - धाम।
महामूढ़ विषयी भयौ, (रे) चित आकर्ष्यौ काम॥
खान-पान परिधान मैं, (रे) जोबन गयौ सब बीति।
ज्यौं बिट पर-तिय सँग बस्यौ, (रे) भोर भए भइ भीति॥
जैसैं सुखहीं तन बढ्यौ, (रे) तैसैं तनहिं अनंग।
धूम बढयौ लोचन खस्यौ, (रे) सखा न सूझ्यौ संग॥
जम जान्यौ सब जग सुन्यौ (रे) बाढ़यौ अजस अपार।
बीच न काहू तब कियौ (जब) दूतनि दीन्हीं मार॥
कहा जानै कैवाँ मुवौ (रे) ऐसै कुमति कुमीच।
हरि सौं हेत बिसारि कै (रे) सुख चाहत है नीच॥
जौ पै जिय लज्जा नहीं (रे) कहा कहौं सौ बार।
एकहु आँक न हरि भजे, (रे) रे सठ, 'सूर' गँवार॥

[†सो यह पद कैसो है, जो या पद कौ सुमरिन रहै तब भगवत अनुग्रह होय, और मन कूँ बोध होय, और संसार सों वैराग्य होय, और श्री भगवान के चरनारविंद में मन लगै। तब दुःसंग सों भय होय, सत्संग में मन लगै। सो देहादिक में तें स्नेह घटै, और लौकिक आसक्ति छूटै। जो भगवान कौ प्रेम है, सो अलौकिक है। सो ताके ऊपर प्रीति बढ़ै।]

यह सुनि देसाधिपति बहोत प्रसन्न भयो। पाछें देसाधिपति के मन में यह आई जो सूरदासजी की परीच्छा करिकै देखूँ। जो भगवान् के आस्रय होयगो, तो ये मेरो जस गावेगो नाँहीं।

सो यह विचारि कै देसाधिपति नें सूरदास सों कही— जो श्री भगवान नें मोकों राज्य दियो है। सो सगरे गुनीजन मेरो जस गावत हैं, सो तिनकों मैं अनेक द्रव्यादिक देत हों। तासों तुम हू गुनी हो, सो तुम हू मेरो कछु जस गावो। सो तिहारे मन में जो इच्छा होय, सो माँगि लेहु।

सो यह देसाधिपति नें कह्यो। तब सूरदासजी नें यह पद गायो—

※ राग केदारो ※

* नाहिन रह्यो मन में ठौर।
नंदनंदन अछत कैसै आनियै उर और?
चलत, चितवत, द्यौस जागत, सपन सोवत राति।
हृदय तें वह मदन मूरति, छिन न इत-उत जाति॥
कहत कथा अनेक ऊधो! लोक लोभ दिखाय।
कहा कहों, चित प्रेम पूरन घट, न सिंधु समाय॥

---

† भावात्मक कथन है।

* श्री हरिराय जी ने इस पद की प्रथम पंक्ति दी है। पूरा पद मथुरा संग्रहालय में संगृहीत चौरासी वार्ता की एक हस्त लिखित प्रति से दिया है।

स्याम गात, सरोज आनन, ललित अति मृदु हास ।
'सूर' ऐसे दरस कों, ये मरत लोचन प्यास ॥

सो यह पद सुनिकै देसाधिपति नें अपनें मन में बिचार्यो—जो ये मेरो जस काहे कों गावेंगे । जो इनकों कछु लैवे को लालच होय तो ये मेरो जस गावें । ये तो परमेश्वर के जन हैं, सो ये तो ईश्वर को जस गावेंगे ।

सो सूरदास जी या कीर्तन में पिछले चरन में कहे हैं—जो 'सूर ! ऐसे दरस कों ये मरत लोचन प्यास ।'

सो देसाधिपति नें सूरदास सों कह्यो—जो सूरदास ! तुम्हारे तो नेत्र हैं नाँहीं, सो प्यासे कैसे मरत हैं ? सो यह तुम कहा कहे ? तब सूरदासजी नें कही—जो या बात की तुमकों कहा खबर है ? जो ये लोचन तो सबके हैं, परंतु भगवान के दरसन की प्यास काहू कों है । जो श्री भगवान के दरसन के जे प्यासे नेत्र हैं, सो तो सदा भगवान के पास ही रहत हैं । सो स्वरूपानंद को रस-पान छिन-छिन में करत हैं, और सदा प्यासे मरत हैं ।

यह सुनि अकबर बादशाह नें कही—जो इनके नेत्र तो परमेश्वर के पास हैं । सो परमेश्वर कों देखत हैं, और कों देखत नाँहीं ।

तब बादसाह नें सूरदास के समाधान की इच्छा कीनी । दोय-चारि गाँम तथा द्रव्य बहोत दैन लाग्यो, सो सूरदास नें कछू नाँहीं लियो । तब अकबर बादसाह सूरदासजी सों कहे—जो बाबा साहिब ! कछू तो मोकों आज्ञा करिये ।

तब सूरदास जी नें कही—जो आज पाछे हमकों कबहू फेर मत बुलाइयो, और मोसों कबहू मिलियो मत ।

[†सो अकबर बादसाह विवेकी हतौ। सो काहे तें ? जो ये योगभ्रष्ट तें म्लेच्छ भयौ है। सो पहले जनम में यह बाल-मुकुंद ब्रह्मचारी हतौ, सो एक दिन यह बिना छानें दूध पान कियौ, तामें एक गाय कौ रोम पेट में गयौ। सो ता अपराध तें यह म्लेच्छ भयौ है।]

सो सूरदास कों दंडवत करिकें समाधान करिकें बिदा किये* ।

---

† भावात्मक कथन है।

* सूरदास सं० १६२३ में अकबर से मिले थे। उस समय गोसाईं विट्ठलनाथ जी की अनुपस्थिति में उनके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी श्रीनाथ जी के स्वरूप को कुछ समय के लिए मथुरा में लें गये थे। उस समय श्रीनाथ जी के साथ सूरदास भी मथुरा गये थे। ('अष्टछाप-परिचय', पृ० १३६)

†प्रसंग ४

अकबर द्वारा सूरदास के पदों का संकलन

★

ता पाछै सूरदास श्रीनाथजीद्वार[1] आये। पाछै देसाधिपति नें आगरे में आयकै सूरदास के पदन की तलास कीनी। जो कोऊ सूरदास जी के पद लावै तिनकूँ रुपैया और मोहोर देय। सो वे पद फारसी में लिखायकै बाँचै। सो मोहोर के लालच सों पंडित कवीस्वर हू सूरदास के पद बनाय कै लाये। तब अकबर बादसाह नें उनसों कह्यौ—जो यह पद सूरदास जी कौ नाँहीं। सो ये पैसा के लिएँ पद की चोरी करत हैं। तब पंडित कवीस्वर ने कही—जो तुम कैसै जाने, जो यह सूरदास कौ पद नाँहीं? जो यह तौ सूरदास कौ ही पद है।

तब पातसाह नें अपने पास सों सूरदास कौ पद अपने कागद के ऊपर लिखायौ। और वे पंडित कवीस्वर सूरदास की भोग (छाप) कौ बनाय कै लाये, सो दोऊ कागद जल में धरिकै कह्यौ—जो ईश्वर साँचे होंय, तौ या बात कौ न्याव[2] करि दीजो। सो यह कहि जल में डारि दिये। सो उन पंडित जोतसीन[3] कौ पद बनायौ हतौ, सो कागद जल में भीजि गयौ; और सूरदास कौ पद हतौ सो कागद जल में नाँहीं भीज्यौ।

[‡सो या भाँति सों, जो जिन भगवदीयन कों भगवान मिले हैं, उनके पद जो गायगौ, सो संसार सों तरैगौ। और चतुराई करि लौकिक मनुष्य के काव्य के कीर्तन कवित्त जो गावैगौ, सो या प्रकार सों संसार में डूबैगौ।]

तब सगरे पंडित कवीस्वर लज्जा पायकै नीचौ माथौ करिकै अपने घर कों गये। सो वे सूरदास जी श्री आचार्य जी के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हते।

---

† यह प्रसंग मूल वार्ता में नहीं है। ‡ भावात्मक कथन है।
१. गोवर्धन २. न्याय ३. ज्योतिषियों

प्रसंग ६

गोकुल में श्री नवनीतप्रिय जी का कीर्तन

★

सो इन सूरदास जी नें श्रीनाथ जी के कीर्तन की सेवा बहोत दिन ताँई करी। सो बीच बीच में कुंभनदास जी, परमानंददास जी के कीर्तन के ओसरा[१] आवते, तब सूरदास जी श्री गोकुल में श्री नवनीतप्रिय जी के दरसन कूँ आवते। सो एक दिन सूरदास जी श्री गोकुल आये हते, सो बाललीला के पद बहोत गाये। सो सुनिकें श्री गुसाईं जी आप बहोत प्रसन्न भये। तब श्री गुसाईं जी आप एक पलना कौ कीर्तन करिकें संस्कृत में सूरदास कों सिखायौ। सो ता समय श्री नवनीतप्रिय जी पालने में बिराजे, तब सूरदास नें श्री गुसाईं जी कृत पलना गायौ—

❀ राग रामकली ❀

† प्रेंख पर्यंक शयनम्।
चिरविरहतापहरमति रुचिरमीक्षणं प्रकटय प्रेमायनं॥
तनु तर द्विज पंक्ति मति ललितानि हसितानि तव वीक्ष्य गायकीनाम्।
इयदवधि परमेतदाशया सम भवज्जीवितं तावकीनाम्॥
तो कता वपुपि तव राजते दृशि तु मद मानिनीमानहरणम्।
अग्रिमे वयसि किमु भाविकामेऽपि निज गोपिकाभावकरणम्॥
व्रजयुवति हृद्यकनकाचलानारोढुमुत्सुकं तव चरणयुगलम्।
तेन मुहुरुन्नमनभ्यासमिव नाथ सपदि कुरुते मृदुलमृदुलम्॥
अधि गोरोचना तिलक मलकोद्ग्रथित विविधमणिमुक्ताफल विरचितम्।
भूषणंराजतेमुग्धतामृत भरस्यंदिवदनेंदुरसितम्॥
भ्रूतटे मातृ रचितांजनबिंदुरतिशयितशोभयादृग्दोपमपनयन्।
स्मरधनुषि मधुपिबन्नलिराज इवराजते प्रणयिसुखनयन॥
वचनरचनोदारहाससहजस्मितामृतचयैरार्तिभरभपयनयन्।
पालय सदास्मानस्मदीय श्रीविट्ठले निजदास्यमुपनयन॥

---

† वार्ता में इस श्लोक की आरंभिक पंक्ति दी गयी है। पूरा श्लोक 'कीर्तन कुसुमाकर' पृ० ३२९ से दिया गया है।　　　१. अवसर

सो यह पद सूरदास नें श्री नवनीतप्रिय जी के आगें गायौ। पाछें या पद के अनुसार सूरदास जी नें बहौत पद करिकें गाये। सो पद—

* राग रामकली *

†प्रेंख पर्यंक गिरिधरन सोहै।
प्रेम आनंद भरी गोपिका कर धरैं, देत झोटा तहाँ काम मोहै॥
मंद मोहन हँसत, दंत-कांति लसत, बजत नूपुर मधुर रुनन कारी।
भाल मसि-बिंदु केसर-तिलक लसै, नैन अंजन मनसिज बान मारी॥
अलक राजत मुख, भुज पसारत सुख, हरत गोपांगना-मान, तिहिं समय तहाँ।
देत सुखसिंधु गोपिका-मनन कों, 'सूर' सोभा निरखि वारैं तन-मन जहाँ॥

सो यह पलना कौ कीर्तन सूरदास जी नें गायौ। पाछें बाल-लीला के पद बहुत गाये। ता पाछें ये पद गाये—

राग बिलावल *

‡देख सखी! एक अद्भुत रूप।
एक अंबुज मध्य देखियत बीस दधि-सुत-जूप॥
एक अबली, दोय जलचर, उभै अर्क अनूप।
पंच वारिज एक ही ढिंग, कहो कहा सरूप॥
सिसु गन में भई सोभा, अर्थ करो विचार।
'सूर' श्री गोपाल की छवि, राखियै उर धार॥१॥

---

† वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति दी गयी है। पूरा पद 'कीर्तन-संग्रह' भाग १, पृष्ठ १०२ मे दिया गया है।

‡ श्री हरिरायजी की वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति है। मूल वार्ता में यह पद पूरा है और राग रामकली में है, किंतु इसका पाठ ठीक नहीं है। यह पद 'कीर्तन-संग्रह' भाग ३, पृष्ठ ६६ में राग बिलावल में दिया गया है। यह दृष्टकूट पद है।

* राग बिलावल *

§सोभा आजु भली बनि आई।
जल-सुत ऊपर हंस बिराजत, ता पर इंद्र-बधू दरसाई॥
दधि-सुत लियौ, दियौ दधि-सुत में, यह छवि देखि नंद मुसकाई।
नीरज-सुत बाहन कौ भक्षन, 'सूर' स्याम लै कीर चुगाई॥

इत्यादिक पद† सूरदास जी नें श्री नवनीतप्रिय जी के आगै गाये। तब श्री गुसाईं जी और श्री गिरिधर जी आदि सब

---

§ यह पद मूल वार्ता में नहीं है और हरिराय जी की वार्ता में इसकी प्रारंभिक पंक्ति दी गयी है। यह पूरा पद 'कीर्तन-संग्रह' भाग ३, पृष्ठ ६६ में राग बिलावल में दिया गया है। यह दृष्टकूट पद है।

† मूल चौरासी वार्ता के अनुसार सूरदास ने उस अवसर पर निम्न लिखित पदों का भी गायन किया था—

राग बिलावल

बाल विनोद आँगन को डोलनि।
मनिमय भूमि सुभग नंदालय, बलि-बलि गई तोतरे बोलनि॥
कठुला कंठ, रुचिर केहर-नख, बज्र-माल बहुतई अमोलनि।
बदन सरोज, तिलक गोरोचन, लर लटकनि मनौं मधुप गन लोलनि॥
लौनी कर परसत आनन पर, कछुक खात कछु लग्यौ कपोलनि।
कहि जन 'सूर' कहाँ लौं बरनौं, धन्य नंद जीवन जग तोलनि॥

राग बिलावल

गोपाल दुरे हैं माखन खात।
देखि सखी सोभा जो बढ़ी अति, स्याम मनोहर गात॥
उठि, अवलोकि ओट ठाढ़ी ह्वै, जिहिं विधि हैं लखि लेत।
चकृत नैंन, चहूँ दिसि चितवत, और सबन कों देत॥
सुंदर कर आनन समीप हरि, राजत यह आकार।
जलरुह मनौं बैर बिधि सौं तजि, लाए मिलन-उपहार॥
गिरि-गिरि परत बदन तें उर पर, हैं दधिसुत के बिंदु।
मानहुँ सुभग सुधा पर बरसत, प्रियजन आगम इंदु॥
बाल-विनोद बिलोकि 'सूर' प्रभु, सिथिल भईं ब्रज-नारि।
फुरत न बचन, बरजिवे कौं मन, रहीं बिचारि-बिचारि॥

बालक कहन लागे—जो हम जा प्रकार श्री नवनीतप्रिय जी कौ सिंगार करत हैं, सों ताही प्रकार के कीर्तन सूरदास जी गावत हैं। तातैं इन सूरदास के ऊपर बहोत ही कृपा है।

———

राग धनाश्री

कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई।
खेलत कुँवर कनक-आँगन मैं, नैंन निरखि छवि पाई॥
कुलही लसति सिर स्यामसुँदर कैं, बहु विधि सुरँग बनाई।
मानौं नव घन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाई॥
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख बगराई।
मानौं प्रगट कंज पर मंजुल अलि-अवली फिरि आई॥
नील, सेत, अरु पीत, लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि, गुरु-असुर, देवगुरु मिलि मनु भौम सहित समुदाई॥
दूध-दंत दुति कहि न जाति कछु, अद्‌भुत उपमा पाई।
किलकत-हँसत दुरति प्रगटति मनु, घन में बिज्जु छटाई॥
खंडित बचन देत पूरन सुख, अलप-अलप जलपाई।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, 'सूरदास' बलि जाई॥

मूल वार्ता में इस पद का राग जैतश्री है और इसका पाठ ठीक नहीं है, अतः यह पद रत्नाकर जी के सूरसागर से दिया गया है। वहाँ पर यह पद ७२६ संख्या का राग धनाश्री में है।

† प्रसंग ६

गोसाईं बालकों द्वारा सूरदास के ज्ञान-चक्षुओं की परीक्षा

★

ता पाछें श्री गुसाईं जी आप तो श्रीनाथजीद्वार पधारे। सो सूरदास जी नें हू श्रीनाथजीद्वार जाइबे को विचार कियौ। तब श्री गिरिधर जी आदि सब बालकन नें कह्यौ—जो सूरदास जी ! दोय दिन श्री नवनीतप्रिय जी कों और हू कीर्तन सुनावो, पाछें तुम जाइयो। तब सूरदास जी श्री गोकुल में रहे। सो तब श्री गिरिधर जी सों श्री गोविंद राय जी, श्री बालकृष्ण जी और श्री गोकुलनाथ जी ये तीनों भाई कहे—जो सूरदास जी जैसो सिंगार श्री नवनीतप्रिय जी को होत है, तैसे ही वस्त्र आभूषन बरनन करत हैं। सो एक दिन अदभुत अनोखौ सिंगार करो, और सूरदास जी कों जनावो मत। सो देखैं ये कीर्तन कैसो करत हैं।

तब गिरिधर जी नें कह्यो—जो ये सूरदास जी भगवदीय हैं, सो इनके हृदय में स्वरूपानंद को अनुभव है। तासों जैसो तुम सिंगार करोगे, सो तैसो ही पद सूरदास जी बरनन करिकै गावेंगे। तासों भगवदीय की परीच्छा नाँहीं करनी। तब उन तीनों बालकन नें श्री गिरिधर जी सों कही—जो हमारो मन है, सो यामें कछू बाधा नाँहीं है। तब श्री गिरिधर जी कहे—जो

† यह प्रसंग मूल वार्ता में नहीं है। इस प्रसंग का अवसर सं० १६२८ के पश्चात् आया होगा, जब गोसाईं विट्ठलनाथ जी स्थाई रूप से गोकुल में रहने लगे थे। ['अष्टछाप परिचय' पृष्ठ १३६ देखिये]

सवारे श्री नवनीतप्रिय जी कों सिंगार करेंगे, सो अद्भुत सिंगार करेंगे। ता पाछें सवारें श्री गिरिधर जी तीनों बालकन सहित श्री नवनीतप्रिय जी के मंदिर में पधारे और सेवा में न्हाये। पाछें श्री नवनीतप्रिय जी कों जगाये। ता पाछें भोग धर्यो। फेरि न्हवायकें सिंगार धरावन लागे। सो अषाढ़ के दिन हते, तातें गरमी बहोत। सो श्री नवनीतप्रिय जी कों कछु वस्त्र नाँहीं धराए। सो मोतीन की दाय लर मस्तक पर, मोती के बाजू-पोंहोंची, कटि-किंकिनी, नूपुर, हार सब मोतीन के, तिलक नकबेसर, करनफूल और कछु नाँहीं। सो सूरदास जी जगमोहन में बैठे हते सो इनके हृदय में अनुभव भयो। तब सूरदास जी अपने मन में बिचारे-जो आजु तो श्री नवनीतप्रिय जी कों अद्भुत सिंगार कियो है। ऐसो सिंगार तो मैंने कबहू देख्यो नाँहीं और सुन्यो हू नाँहीं, जो केवल मोती धराए हैं, और वस्त्र तो कछु धराए हैं नाँहीं। तासों आज मोकों कीर्तन हू अद्भुत गायो चहियै।

सो जब सिंगार के दरसन खुले, तब श्री गिरिधर जी नें सूरदास जी कों बुलायो और कह्यो—जो सूरदास जी! दरसन करो, और कीर्तन गाओ। तब सूरदास जी नें बिलावल में यह कीर्तन करिकें श्री नवनीतप्रिय जी कों सुनायो। सो पद—

* राग बिलावल *

†देखे री हरि नंगम नंगा।
जलसुत-भूषन अंग बिराजत, बसन हीन छबि उठत तरंगा॥
कहा कहौं अँग-अँग की सोभा, निरखत लज्जित कोटि अनंगा।
कछु दधि हाथ, कछू मुख माखन, 'सूर' हँसत ब्रज-जुवतिन संगा॥

---

† हरिराय जी की वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति है। पूरा पद अन्यत्र से उद्धृत किया गया है।

सो सुनिकै श्री गिरिधर जी आदि सगरे बालक अपने मन में बहौत प्रसन्न भये। और सूरदास सों कहन लागे—जो सूरदास जी ! यह तुम कहा गाये ? तब सूरदास जी नें बिनती कीनी—जो महाराज ! जैसौ आपनें अद्भुत सिंगार कियौ, तैसौ ही मैं अद्भुत कीर्तन गायौ है। तब सगरे बालक यह सुनिकै सूरदास जी के ऊपर बहौत प्रसन्न भये। सो ये सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभु के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हते। सो इनकों श्रीठाकुर जी नित्य हृदय में अनुभव करावते।

ता पाछै श्री गिरिधर जी आप सूरदास जी कों संग लैकै श्री नाथजीद्वार आये। तब श्री गिरिधर जी नें सब समाचार श्री गुसाईं जी सों कहे—जो या प्रकार अद्भुत सिंगार श्री नवनीतप्रिय जी कौ सगरे बालकन के मनोरथ सों कियौ। सो सूरदास जी नें ऐसौ ही कीर्तन कियौ। सो इनके हृदय में अनुभव है।

तब श्री गुसाईं जी आपु श्री गिरिधर जी सों कहे—जो सूरदास जी की कहा बात है ! जो ये पुष्टिमारग के जहाज† हैं। सो भगवत लीला कौ अनुभव इनकों अष्ट प्रहर है। सो ये सूरदास जी श्री आचार्य जी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते।

———

† श्री बल्लभाचार्य जी सूरदास को 'सूर सागर' और गो० विट्ठलनाथ जी उनको 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा करते थे।

† प्रसंग ७

श्रीनाथजी की भक्त-वत्सलता

★

और सूरदास जी के पास एक ब्रजवासी कौ लरिका[1] हतौ, सो सब काम-काज सूरदास जी कौ करतौ। ताकौ नाम गोपाल हतौ। सो एक दिन सूरदास जी महाप्रसाद लैन कों बैठे, तब वा गोपाल सों सूरदास जी कहे—जो मोकूँ तू लोटी में जल भर दीजो। तब गोपाल ब्रजवासी नें कह्यौ—जो तुम महाप्रसाद लैनकोंबैठो, जो मैं जल भरि देऊँगो। सो यह कहिकै गोपाल तौ गोबर लैन कों गयौ। सो तहाँ दोय-चार वैष्णव हते, सो तिनसों बात करन लाग्यौ। तब सूरदास कों जल दैनौ भूल गयौ। और सूरदास जी तौ महाप्रसाद लैन बैठे, सो गरे में कौर[2] अटक्यौ। तब बाँये हाथ सों लोटा इत-उत देखन लागे, सो पायौ नाँहीं। तब गरे में कौर अटक्यौ, सो बोल्यौ न जाय। तब सूरदास व्याकुल भये। सो इतने में श्रीनाथ जी सूरदास जी के पास आयकें अपनी झारी धरि आये। सूरदास जी नें झारी में तें जल पीयौ।

तब गोपाल ब्रजवासी कों सुधि आई, जो सूरदास जी कों मैं जल नाँहीं भरि आयौ। सो दौरचौ आयौ। इतने में सूरदास महाप्रसाद लैकें आये। तब गोपाल ब्रजवासी नें आयकें सूरदास सों कह्यौ—जो सूरदास जी! तुम महाप्रसाद लै उठे, सो तुमने जल कहाँ तें पीयौ? जो मैं तौ गोबर लैन गयौ हतौ, सो वैष्णव के संग बात करत में भूलि गयौ। तासों अब मैं दौरचौ आयौ हूँ। तब सूरदास ने ब्रजवासी सों कह्यौ—

† यह प्रसंग मूल वार्ता में नहीं है।

१. लड़का, २. ग्रास

जो तैनें गोपाल नाम काहे कों धरायौ ? जो गोपाल तौ एक श्रीनाथ जी हैं। सो तासों आज मेरी रक्षा करी। ना तर गरे में ऐसौ कौर अटक्यौ हतौ, सो जल बिना बोल निकसै नाँहीं। तब मैं व्याकुल भयौ, तब हाथ में जल की झारी आई, सो मैं जल-पान कियौ। तासों मैंनें जान्यौ जो तैनें धर्‌यौ होयगौ। और अब तू कहत है, जो मैं नाँहीं हतौ। सो तातें मंदिर वारौ गोपाल होयगौ। जो देख तौ झारी कैसी है ?

तब गोपाल ब्रजवासी जहाँ सूरदासजी महाप्रसाद लिए हते, तहाँ आयकै देखै, तो सौने की झारी है ! सो उठाय कै गोपाल सूरदास जी के पास आयकै कह्यौ—जो यह झारी तौ मंदिर की है। सो तब सूरदास नें वा गोपाल ब्रजवासी सों कह्यौ—जो तैनें बहौत बुरौ काम कियौ, जो श्री ठाकुर जी कों इतनौ स्रम करवायौ। जो मेरे लिएँ झारी लैकै श्रीठाकुर जी कों आनौ पर्‌यौ। सो या प्रकार सूरदास जी नें गोपाल सों कह्यौ—जो यह झारी तू जतन सों राखियो। और जब श्री गुसाईं जी आपु पौढिकै उठैं तब उनकों सौंप आइयो। तब गोपाल नें झारी लैकै श्रीगुसाईं जी पास आय, दंडौत कर आगै राखी। तब श्रीगुसाईं जी आपु कहे—यह झारी तेरे पास कैसें आई ? जो यह झारी तौ श्री गोवर्धनधर की है। तब गोपाल नें श्री गुसाईं जी सों बिनती कीनी—जो महाराज ! यह अपराध मोसों पर्‌यौ है। पाछै सब बात कही।

तब यह बात सुनिकै श्रीगुसाईं जी आप तत्काल स्नान करिकै झारी कों मँजवाय, दूसरौ वस्त्र लपेटिकै मंदिर में बेगि ही झारी लैकै पधारे। पाछै श्री गोवर्धनधर कूँ जल-पान करायकै कहे—जो आज तौ सूरदास की बड़ी रक्षा कीनी। सो तुम बिन कौन वैष्णव की रक्षा करै। तब श्रीनाथ जी नें

कही—जो सूरदास के गरे में कौर अटक्यौ, सो व्याकुल भये, तासों झारी धरि आयौ।

[‡ सो काहे तें ? जो सूरदास व्याकुल भये, सो मैं ही व्याकुल भयौ। जो भगवदीय मेरौ स्वरूप है।]

ता पाछै उत्थापन के किंवाड़ खोले। सो सूरदास जी आयकै उत्थापन के दरसन किये। सो उत्थापन समै कौ भोग श्री गुसाईं जी श्रीनाथ जी कों धरि सूरदास के पास आयकै कहे—जो आज गोपाल नें तिहारे ऊपर बड़ी कृपा करी है। तब सूरदास जी नें कह्यौ–जो महाराज! यह सब आपकी कृपा है। नाहिं तौ श्रीनाथ जी मो सरीखे पतितन कों कहा जानैं! जो सब श्री आचार्य जी की कानि[1] तें अंगीकार करत हैं। तब श्री गुसाईं जी आपु कहे—जो तुम बड़े भगवदीय हौ। जो भगवदीय बिना ऐसी दैन्यता कहाँ मिले! सो सूरदास जी श्री आचार्य जी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते।

———

‡ भावात्मक कथन है।

१. लज्जा।

†प्रसंग ८

लोभी बनिया को उपदेश

श्रीनाथ जी के मंदिर के नीचें गोपालपुर गाँम है। सो तहाँ एक बनिया रहतौ। सो ऐसे गृहकार्य में और लोभ में आसक्त हतौ, जो कबहू श्रीनाथ जी कौ दरसन नाँहीं कियौ। और श्री गुसाईं जी की सरन हू नाँहीं आयौ। सो गोपालपुर में परबत के नीचें वाकी दुकान हती। सो वह बनिया गोपालपुर में दुकान खोलतौ, सो पहलें जो कोई वैष्णव श्रीनाथ जी के दरसन करिकें परवत के ऊपर सों आवतौ, ताकों बुलायकें पहलें पूछतौ—जो आज श्रीनाथ जी कौ कहा सिंगार है? सो वह वैष्णव याकों बतावतौ। सो ताही प्रकार वह बनिया सब वैष्णवन के आगें श्रीनाथ जी के दरसन की बड़ाई करतौ। जो देखो, आज श्रीनाथ जी कौ कैसौ सिंगार भयौ है! कैसौ अलौकिक दरसन भयौ है!

या भाँति सों सब तें कहतौ। आप दरसन कों कबहू नाँहीं आवतौ, और वैष्णवन कों दिखाइबे के लिएँ माला पहरि लेतौ। और आछौ तिलक, आछौ छापा लगावतौ। और वैष्णव आगें प्रेम की वार्ता करतौ। सो वे वैष्णव प्रसन्न होय कें वाकों वैष्णव जानिकें सीधौ-सामग्री लेते। सो या प्रकार पाखंड करि विस्वास दै-दैकें सब वैष्णवन कों ठगै। सो द्रव्य हू बहौत भेलौ कियौ, परंतु कौड़ी एक खरचै नाँहीं। सो ऐसौ करत साठ बरस कौ भयौ। तब एक दिन सूरदास जी सों वा बनिया नें कही—जो सूरदास जी! आज तुम देखौ, कैसौ

† यह प्रसंग मूल वार्ता में नहीं है।

सुंदर सिंगार भयो है। और तुम तो कोई दिन मेरी हाट सों सीधो सामान लेत नाँहीं हो, और कोई दिन मेरी हाट ऊपर तुम आवत नाँहीं हो। सो तुम ऐसे वैष्णव गुनी हो, सो मेरो अपराध कहा, जो मेरी हाट तें सौदा लेत नाँहीं? और यह हाट तिहारी है। मैं तो तुम वैष्णवन को दास हूँ, तासों मो पर कृपा करो।

या भाँति बनिया के बचन सुनि सूरदास अपने मन में विचारी—जो देखो, बनिया कैसो सुंदर बोलत है। जो ऊपर सों लोभ सों कपट करत है, तासों अब याको कपट छुड़ावनो। और बनिया नें कोई दिन श्रीनाथ जी के दरसन किये नाँहीं, सो याकों दरसन हू करावनो, और याकों वैष्णव हू कराय देनो। तब यह विचारिकें सूरदास नें वा बनिया सों कही—जो तू जनम भर में कोई दिन दरसन नाँहीं कियो है, सो मैं तोकों जानत हों। और तू वैष्णव है नाँहीं, सो तासों मैं तेरी हाट पर नाँहीं आवत हों। तू साँची कहि दे—जो तैनें जनम भर में कोई दिन श्रीनाथ जी के दरसन किये हैं? तब यह बचन सुनिकै बनिया अपने मन में बहोत ही खिस्यानो होय गयो। और वह बनिया सूरदास सों बोल्यो—जो सूरदास जी! तुम यह बात और काहू के आगें मत कहियो। जो मैं यासों दरसन कों नाँहीं आवत हों, जो हाट छोड़ि दरसन कों जाऊँ, तो यहाँ वैष्णव सौदा कों फिरि जायँ। जो और की हाट सों लैन लागें, तब मैं खाऊँ कहाँ तें? और कोऊ मेरे पास ऐसो मनुष्य नाँहीं है, जो जा समय दरसन के किंवाड़ खुलें, ता समय मोकों आयकै खबर करे, तातें मैं बेगि ही दौरिकें दरसन करि आऊँ। तब वा बनिया तें सूरदास नें कही—जो मैं जा समय आयकै खबर करूँ, सो ता समय तू चलैगो? तब बनिया

नें कही—जो तुम आयकै खबर करियो, जो मैं चलूँगौ। जो मेरे मन में दरसन की बहौत है। तब सूरदास जी कहे—जो मैं उत्थापन के समय आऊँगौ। सो यह कहिकै सूरदास जी तौ गये। पाछै जब उत्थापन कौ समय भयौ, तब संखनाद भये, तब सूरदासजी नें आयकै वा बनिया सों कही—जो अब संखनाद भये हैं, तासों दरसन कौ समय है, सो अब चलो। तब वा बनिया नें सूरदास जी सों कह्यौ—जो या समय गाँम के लोग सौदा लैन आवत हैं, सो भोग के किंवाड़ खुलें, ता समय तुम मोकों खबर करियो।

तब सूरदास जी नें पर्वत ऊपरआयकै श्रीनाथ जी के दरसन किये, और कीर्तन किये। ता पाछै श्रीनाथजी के भोग के दरसन कौ समय भयौ, तब सूरदास जी परवत सों नीचै उतरि कै बनिया सों कहे—जो दरसन कौ समय है, तासों अब तौ दरसन कों चल। तब वा बनिया नें सूरदास सों कह्यौ—जो सूरदास जी! अब तौ बन तें गाय आइवे कौ समय भयौ है, तासों मंदिर में चलूँ तौ गाय आयकै मेरौ सगरौ अनाज खाय जाँय। तासों अब तुम सैन आरती के समय जताइयो, सो तहाँ ताँई गाय सब अपने-अपने घर जाँयगीं।

तब सूरदास जी फेरि भोग के समय जायकै दरसन कियौ। पाछै संध्या के दरसन किये। पाछै सैन आरती के दरसन कौ समय भयौ, तब सूरदास जी नें आयकै बनिया कों खबर कीनी—जो चल, अब सैन आरती के दरसन कौ समय है। तब वा बनिया नें सूरदास सों कही—जो सूरदास! आज तुमकों बहौत स्रम भयौ है। परंतु अब दीयौ[1] वारिवे[2] कौ समय है।

१. दीपक		२. जलाने

सो काहे तें–जो अब या समय लक्ष्मी आवत है, तासों दीया न होय तो लक्ष्मी पाछी फिरि जाय। और कोई मेरी हाट तें अन्न चुराय लेय तो मैं कहा करूँ ? तासों अब मैं सवारें प्रातःकाल दरसन कर ता पाछें हाट खोलूँगो। तासों मोकों मंगला के समय आयकें खबर करियो। आज मैंने तुमसों बहोत फेर[1] खवाये। तब सूरदास जी मंदिर में आयकें श्रीनाथ जी के दरसन किये। ता पाछें सैन समय कीर्तन गाये। पाछें प्रातःकाल भयो, तब न्हायकें सूरदास जी नें आयकें वा बनिया सों कही–जो मंगला को समय है,सो अब तो चल। तब वा बनिया नें कही–जो सूरदास जी! अब ही तो हाट बुहारिकें माँड़नी है। तासों बोहनी के समय कोई गाहक फिरि जाय तो सगरो दिन खाली जाय। तासों हाट लगायकें सिंगार के दरसन कों चलूँगो। तासों सिंगार के समय कहियो। तब सूरदास जी नें मंगला–आरती के दरसन किये। पाछें सूरदास जी सिंगार के समय फेर आये। तब वा बनिया नें कही—जो अब ही में आछी काहू की बोहनी कीनी नाँहीं है, और गाय डोलत हैं। तासों अब राजभोग के दरसन अवश्य करूँगो। सो देखो, तुम काल्हि तें मेरे लिएँ बहोत फिरत हो,जो तुम बड़े भगवदीय हो। सो सूरदास जी फेर श्रीनाथ जी के दरसन कों परबत पर आये। तब श्रीनाथ जी के सिंगार के दरसन किये। कीर्तन किये। ता पाछें राजभोग आरती को समय भयो, तब सूरदास जी नें वा बनिया सों कह्यो—जो अब चलोगे? तब वा बनिया नें कह्यो–जो या समय मैं कैसे चलूँ ? जो अब वैष्णव राजभोग के दरसन करिकें नीचें आवेंगे। सो सब या समय सीधो–सामग्री

---

१. चक्कर

लेत हैं। जो मैं बूढ़ो, कब आऊँ परबत सों उतरिकै। कैसै बेगि आयौ जाय ! और यही बखत बिक्री को समय है। जो याही समय कछू मिलै सो मिलै। तासों उत्थापन के समय दरसन करूँगो।

या प्रकार सूरदास जी वा बनिया के साथ तीन दिन ताँई रहे, परंतु वह बनिया ऐसो लोभी, सो दरसन कों नाँहीं गयो। ता पाछे चौथे दिन न्हायकै सूरदास जी प्रातःकालमंगला के दरसन कों चले। तब सूरदास जी अपने मन में विचारे—जो देखो या बनिया कों तीन दिन भये, परंतु दरसन कों नाँहीं गयो। तासों आज जो यह न चलै, तो याकों भय दिखावनो और दरसन करावनो।

यह विचारिकै सूरदास जी वा बनिया के पास आयकै कह्यो—जो तीन दिन बीत चुके मोकों फिरते, पर तू दरसन कों नाँहीं चल्यो। जो आज तो चल। तब वा बनिया नें कह्यो—जो कछू बोहनी करि सिंगार के दरसन करूँगो। तब सूरदासजी वा बनिया सों कही—जो अब तो मैं तेरी बात सगरे वैष्णवन में प्रगट करूँगो। जो यह बनिया झूठो कहोत है, सो कबहू याने श्रीनाथ जी को दरसन नाँहीं कियो। और यह वैष्णव हू नाँहीं है। अब तेरे पास कोई वैष्णव सौदा लेन आवेगो, तो मैं तेरे दोहा—चौपाई—पद कुटिलता के करिकै वैष्णवन कों सुनाऊँगो। सो या भाँति कहिकै भैरव राग में एक पद गायो।

सो यह पद सूरदास जी नें वा बनिया कों वाही समय कहिकै सुनायो। सो तब तो वोह बनिया अपने मन में डर्‌यो। पाछे सूरदास जी के पाँमन परि वा बनिया नें बिनती कीनी। जो तुम मेरे दोहा-कवित्त कछू बरनन मत करो, और मेरी बात कोई सों प्रगट मत करो। जो मैं अब ही तिहारे संग

चलूँगौ। पाछै वह बनिया सूरदास जी के संग आयौ। तब मंगला के किंवाड़ खुले, तब सूरदास जी नें श्रीनाथ जी सों कह्यौ—जो महाराज! यह बनिया दैवी जीव है, सो तासों अब याके मन कों आकर्षन करिकें याकौ उद्धार करो। सो काहे तें? जो यह तिहारी धुजा के नीचै रहत है। तब श्रीनाथ जी कहे—जो मेरे पास रहत है, सो कहा मोकों जानत है? तुम सब भगवदीयन की कृपा होय, सो तब ही मोकों पावै।

[‡सो काहे तें? जो गंगा-यमुना में अनेक जीव हैं, सो कहा कृतार्थ हैं? जो माखी-मच्छर-चैंटी आदि श्री प्रभु के बहोत जीव हैं, सो कहा कृतार्थ हैं? जो भगवदीयन कौ संग होय, तब ही कृतार्थ होय। सो तब ही श्री प्रभून कों पावै। भगवदीयन के संग सों दास-भाव होय, तब ही कृपा होय।]

पाछै श्रीनाथ जी नें वा बनिया कों ऐसौ दरसन दियौ, सो वाकौ मन हर लीनौ। सो जब मंगला के दरसन होय चुके, तब वा बनिया नें सूरदास जी के चरन पकरिकें बिनती कीनी—जो महाराज! मेरौ जनम सगरौ वृथा गयौ द्रव्य जोरिवे में। मेरे पास द्रव्य बहोत है, सो अब तुम चाहौ तहाँ या द्रव्य कों खरच करो। और मोकों श्री गुसाईं जी कौ सेवक करायकै वैष्णव करो। तब सूरदास जी नें वा बनिया सों कह्यौ—जो तू न्हाय कै काहू कों छूइयो मत, यहाँ आय बैठियो। सो इतने में श्री गुसाईं जी आप सिंगार कर चुके, तब सूरदास जी नें श्री गुसाईं जी सों बिनती कीनी—जो महाराज! या बनिया कों सरन लीजियै। तब श्री गुसाईं जी आप श्रीमुख सों सूरदास जी सों कहे—जो सूरदास जी!

‡ भावात्मक कथन है।

तुमने भलौ साठ बरस कौ बूढ़ौ बैल नाथ्यौ। तुम बिना या बनिया कौ सगरौ जनम यों ही जातौ। पाछै श्री गुसाईं जी आप वा बनिया कों बुलायकै श्रीनाथ जी के सन्निधान बैठायकै नाम–ब्रह्मसंबंध करवायौ। सो वा बनिया की बुद्धि निरमल होय गई। सो तब सगरे दरसन नित्य नैम सों करन लाग्यौ। और वा बनिया नें श्री गुसाईं जी कों बहौत भेंट करी। और श्रीनाथ जी के बागा-वस्त्र सामग्री कराय आभूपन कराये, और अंगीकार कराये। ता पाछै एक दिन वा बनिया नें सूरदास जी सों कही—जो सूरदास जी! तिहारी कृपा तें मैं श्री गोवर्धननाथ जी के दरसन पायौ, और वैष्णव भयौ। तासों अब ऐसी कृपा करो, जो या ही जनम में मेरौ अंगीकार करैं, और मोकों संसार कौ दुःख-सुख बाधा न न करै। तब सूरदास जी नें एक पद‡ करिकै वा बनिया कों सिखायौ।

तब बनिया कों दृढ़ भक्ति भई। लौकिक की बासना सब दूर भई। सो ज्ञान-वैराग्य सर्वोपरि भक्ति भई। सो श्रीनाथ जी के चरन कमल में दृढ़ आसक्ति और स्वरूपानन्द कौ अनुभव भयौ। तब रस में मगन होय गयौ। सो या प्रकार सूरदास जी के संग तें ऐसौ लोभी बनिया हू कृतार्थ भयौ। सो वे सूरदास जी ऐसे भगवदीय हते।

[† सो काहे तें? जो मूल में दैवी जीव है, सो श्री-ललिता जी की सखी है। सो लीला में याकौ नाम 'विरजा' है। सो सूरदास कौ संग पायकै लीला कौ अनुभव भयौ। तातें भगवदीयन कौ संग सर्वोपरि है।]

‡ यह उपदेशात्मक बृहत् पद 'सूर-साठी' के नाम से प्रसिद्ध है।

† भावात्मक कथन है।

†प्रसंग ९

भगवदीयों का सत्संग

★

और एक समय श्री गोकुल तें परमानंद आदि सब वैष्णव दस-पंद्रह सूरदास जी सों मिलवे कों और श्री गोवर्धन-नाथ जी के दरसन कों आये। सो सैन-आरती के दरसन कर सूरदास जी के पास आये। तब सूरदास जी नें सगरे वैष्णवन कों बहौत आदर सन्मान कियौ, और ताही समय कीर्तन गाये। सो पद—

※ राग केदारौ ※

*जा दिन संत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसौ दरसन पावत॥
नयौ नेह दिन-दिन प्रति उनकैं, चरन-कमल चित लावत।
मन-बच-कर्म और नहिं जानत, सुमिरत औ सुमिरावत॥
मिथ्यावाद-उपाधि रहित ह्वै, विमल-विमल जय गावत।
बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावत॥
संगति रहैं साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत।
'सूरदास' संगति करि तिनकी, जे हरि-सुरति करावत॥

※ राग कान्हरौ ※

‡हरिजन संग छिनक जो होई।
कोटि स्वर्ग-सुख, कोटि मुक्ति-सुख, वा सम लहै न कोई॥
बड़े भाग, पुन्य संचित फल, कृष्ण-कृपा ह्वै जाकै।
'सूरदास' हरिजन-पद-महिमा कहत भागवत ताकै॥

---

† यह प्रसंग मूल वार्ता में नहीं है।

* वार्ता में उस अवसर पर गाये हुए कई पदों की आरंभिक पंक्तियाँ दी गयी हैं। यह पूरा पद सूरसागर संख्या ३६० के पाठानुसार है। इसका राग सूरसागर में राग केदारौ और वार्ता में राग हमीर है।

‡ यह पद कीर्तन संग्रह से दिया गया है।

सो या प्रकार सूरदास जी नें अनेक पद वैष्णवन कों सुनाये। तब सब वैष्णव बहोत प्रसन्न भये। पाछें सूरदास जी नें उन वैष्णवन सों कह्यौ—जो कछू मो पर कृपा करिकें आज्ञा करियें। तब सब वैष्णवन नें सूरदास जी सों कह्यौ—जो ज्ञान, योग, परम तत्व और श्री ठाकुर जी को प्रेम-स्नेह को स्वरूप सुनावो। तब सूरदास जी नें यह कीर्तन सुनायौ—"जोग सों कोउ नाँहीं हरि पाये।"

सो या भाँति अनेक कीर्तन करि वैष्णवन कों समुझाये। तब सगरे वैष्णव प्रसन्न होयकें कहे—जो सूरदास जी के ऊपर बड़ी भगवत कृपा है। ता पाछें सवारे भये सगरे वैष्णवन नें श्रीनाथ जी के दरसन किये। ता पाछें सूरदास जी सों विदा होयकें गोकुल आये। सो वे सूरदास जी श्री आचार्य जी के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हते।

———

†प्रसंग १०

सवालाख पदों की पूर्ति

★

सो या प्रकार सूरदास जी नें बहोत दिन ताँई भगवत-सेवा कीनी। ता पाछें जाने, जो भगवत इच्छा मोकों बुलायवे की है।

[‡सो काहे तें ? जो प्रभुन की यह रीति है, जो जब बैकुंठ सों भूमि पर प्रकट होयवे की इच्छा करत हैं, तब बैकुंठ-वासी जो भक्त हैं, सो पहलें भूमि पर प्रकट करत हैं। ता पाछें आपु श्री भगवान प्रकट होय भक्तन के संग लीला करत हैं। पाछें अपुने भक्तन कों या जगत सों तिरोधान होय ता पाछें बैकुंठ में लीला करत हैं। सो जैसें जसोदा, गोपीजन, सखा, वसुदेव, देवकी, यादव सब प्रकट पहलें ही किये। ता पाछें आप प्रकट होयकें लीला भूमि पर करिकें पाछें जादवन कूँ मूसल द्वारा अंतर्धान करि लीला किये। सो श्री नंदराय जी, श्री जसोदा जी, गोपीजन कों अंतर्धान लौकिक लीला नाँहीं दिखाये। सो तैसें ही श्री आचार्य जी, श्री गुसाँई जी श्री पूर्ण-पुरुषोत्तम को प्राकट्य है। सो लीला संबंधी वैष्णव प्रकट किये। अब श्री आचार्य जी आप अंतर्धान लीला किये। और श्री गुसाँई जी कों करनो है* । सो पहलें भगवदीयन कूँ नित्यलीला

† यह प्रसंग मूल वार्ता में नहीं है।

‡ यह भावात्मक कथन है।

* गोसाईं श्री विट्ठलनाथ जी का देहावसान-काल सं० १६४२ निश्चित किया गया है, अतः सूरदास का देहावसान काल उससे कुछ पहले अर्थात् १६४० निश्चित होता है। ['अष्टछाप-परिचय' पृष्ठ १२६ और 'सूर-निर्णय' पृष्ठ १०० देखिये।]

में स्थापन करिकै आपु पधारेंगे। सो भगवदीय कों (अपनी) लौकिक अंतर्धान लीला दिखावत नाँहीं। सो जैसै चाचा हरिवंस जी सों कहे—जो तुम गुंजरात जावो। सो या प्रकार गुजरात पठायकै अंतर्धान लीला किये। सो सूरदास जी कूँ नित्यलीला में बुलायवे की इच्छा श्री गोबर्धनधर की है।]

सो तब सूरदास जी मन में विचारे—जो मैं तौ अपने मन में सवालाख कीर्तन प्रकट करिवे कौ संकल्प कियौ है, सो तामें तें लाख कीर्तन तौ प्रकट भये हैं। सो भगवत इच्छा तें पचीस हजार कीर्तन और प्रकट करने। ता पाछै यह देह छोड़िकै अंतर्धान होय जानौ। सो या प्रकार सूरदास जी अपने मन में विचार करत हते। वाही समय श्री गोबर्धननाथ जी आपु प्रकट होयकै दरसन दैकै कह्यौ—जो सूरदास जी! तुमनें जो सवालाख कीर्तन कौ मनोरथ कियौ है, सो तौ पूरन होय चुक्यौ† है। जो पचीस हजार कीर्तन मैंनें पूरन करि दिये हैं। तासों तुम अपनौ कीर्तन कौ चोपड़ा* देखो। तब सूरदास जी नें एक वैष्णव सों कह्यौ—जो तुम मेरे कीर्तन के चोपडा देखो। सो तब यह वैष्णव देखै तौ सूरदास जी के कीर्तन के बीच-बीच में 'सूरस्याम' कौ

† सूरदास द्वारा लाख-सवालाख पद-रचना की किंवदंती बहुत पुरानी है। उसकी पुष्टि वार्ता के इस कथन से भी होती है। किंतु आजकल के विद्वान इस किंवदंती को अविश्वसनीय मानते हैं। सूरदास की प्रतिभा, उनका दैनिक क्रम और उनके लंबे काव्य-काल का विचार करते हुए यह किंवदंती अविश्वसनीय मानने का कोई कारण ज्ञात नहीं होता है। ['सूर-निर्णय', पृष्ठ १७० देखिये।]

* इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि सूरदास की विद्यमानता में ही उनके समस्त पदों का संकलन हो चुका था, किंतु ऐसी कोई प्रति अब तक उपलब्ध नहीं हुई। जो प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, वे उनके देहावसान के बहुत समय बाद की हैं और उनमें उनके थोड़े से पदों की ही संकलन है।

भोग (छाप) है । सो ऐसे कीर्तन सगरी लीला में हैं । सो पचीस हजार† हैं । सो बात वा वैष्णव नें सूरदास सों कही— जो काल्हि तक तौ 'सूरस्याम' के कीर्तन हते नाँहीं और आज सगरी लीला की बीच में हैं !

तब सूरदास जी श्रीनाथ जी कों दंडवत करिकें कहे—जो अब मेरौ मनोरथ आप की कृपा तें पूरन भयौ । तासों अब आपु आज्ञा देउ, सो करौं । तब श्री गोवर्धनाथ जी कहे—जो अब तुम मेरी लीला में आयकें लीला-रस कौ अनुभव करो । सो यह आज्ञा करिकें श्रीनाथ जी अंतर्धान भये । तब सूरदास जी श्री गोवर्धननाथ जी कों दंडवत करिकें मन में बहोत प्रसन्न भये । परंतु पास दोय वैष्णव साधारन हते सो जाने नाँहीं, जो श्री ठाकुर जी आपु सूरदास जी के पास पधारे, और कहा आज्ञा दीनी । सो काहे तें ? जो श्री ठाकुर जी के स्वरूप कौ अनुभव भगवदीय बिना और काहू कों नाँहीं ।

---

† सूरदास के अनेक पद 'सूरश्याम' की छाप के मिलते हैं, किंतु उनकी संख्या अभी तक सैकड़ों तक ही सीमित है । सूरदास के समस्त उपलब्ध पदों की संख्या भी अभी तक पच्चीस हजार नहीं है; फिर 'सूरश्याम' की छाप वाले पदों की संख्या पच्चीस हजार तक पहुँचना अभी तो कल्पनातीत है ।

†प्रसंग ११

देहावसान

★

सो तब सूरदास जी अपने मन में यह विचार करिकै परासौली ‡ आये। सो तहाँ अखंड रासलीला ब्रह्मरात्र करि भगवान नें रासपंचाध्याई की सगरी लीला उहाँ करी है। सो जहाँ उडुराज चंद्रमा प्रकट्यो है। सो तहाँ चंद्रसरोवर है। ऐसे अलौकिक स्थल में आये।

[§ जो ये अष्टसखा हैं। सो श्री गिरिराज में आठ द्वार हैं, सो तहाँ के ये अधिकारी हैं। तासों आठों सखा अपने-अपने द्वार पर श्री गिरिराज में ही देह छोड़ी है। और अलौकिक देह धरिकै सदा-सर्वदा लीला में विराजमान हैं। (१) गोविंदकुंड ऊपर एक द्वार है, ताके सन्मुख परासौली चंद्रसरोवर है, तहाँ सूरदास जी सेवा में मुखिया हैं। (२) अप्सराकुंड ऊपर एक द्वार है, तहाँ सेवा में छीतस्वामी मुखिया हैं। (३) सुरभीकुंड ऊपर द्वार है, तहाँ परमानंददास सेवा में मुखिया हैं। (४) और गोविंदस्वामी की कदमखंडी पास एक द्वार है, तहाँ

---

† यह प्रसंग मूल वार्ता के प्रसंग ९ के अंतर्गत है।

‡ परासौली गोवर्धन में एक छोटा सा ग्राम है। इसके निकट चंद्रसरोवर नामक एक सुंदर कुंड बना हुआ है। यहाँ पर श्री महाप्रभु जी की बैठक भी है। अधिकारी कृष्णदास से कलह होने पर गुसाईं विट्ठलनाथ जी ने यहाँ पर छै महीने तक विप्रयोग किया था। परासौली में सूरदास का निवास स्थान था और अंत में यहीं पर उनका देहावसान भी हुआ। सूरदास की स्मृति स्वरूप यहाँ पर एक कुटी बनी हुई है, जो सूर-कुटी कही जाती है।

§ भावात्मक कथन है। इसमें अष्टछाप के आठों महानुभावों के गोवर्धन स्थित स्थानों का निर्देश किया गया है।

गोविंदस्वामी मुखिया हैं (५) और रुद्रकुंड के पास एक द्वार है, तहाँ चतुर्भुजदास सेवा में मुखिया हैं। (६) बिलछू सन्मुख एक बारी है, सो जा मारग होयकै रासलीला कों पधारत हैं, सो तहाँ की सेवा में कृष्णदास अधिकारी मुखिया हैं। (७) और मानसी गंगा के पास एक द्वार है, सो तहाँ की सेवा में नंददास मुखिया हैं। (८) और आन्यौर के सन्मुख एक द्वार है, सो तहाँ जमुनावतौ गाँम है, सो ता द्वार के मुखिया कुंभनदास हैं।

या प्रकार श्री गिरिराज में नित्य निकुंज लीला है। सो ता निकुंज लीला के आठ द्वार हैं। तहाँ के आठ सखा सखी रूप हैं, सो सेवा में सदा तत्पर हैं। तामों सूरदास कौ ठिकानौ परासौली है।]

सो श्री गोबर्धननाथ जी की धुजा कों साष्टांग दंडवत करिकै धुजा के सन्मुख मुख करिकै सूरदास जी सोये। परंतु मन में यह आई जो श्री आचार्य जी और श्री गुसाईं जी आपु मेरे ऊपर बड़ी कृपा करी है। श्री गोबर्धननाथ जी की लीला कों याही देह सों अनुभव कराये। परंतु या समय एक बार श्री गुसाईं जी आपु मेरे ऊपर कृपा करिकै दरसन देंय, तौ मेरे बड़े भाग्य हैं। श्री गुसाईं जी कौ नाम कृपासिंधु है, सो भक्तन कौ मनोरथ पूरनकर्ता हैं, सो पूरन करेंगे। सो या प्रकार सूरदास जी श्री गुसाईं जी के स्वरूप कौ चिंतवन करत हते, और यहाँ श्री गुसाईं जी आपु श्री गोबर्धननाथ जी कौ सिंगार करत हते। सो वा दिन श्री गुसाईं जी नें सूरदास कों जगमोहन में बैठे कीर्तन करत न देखे। सो ता समय श्री गुसाईं जी आपु सेवकन सों पूछे—जो सूरदास जी कहाँ हैं ?

तब एक वैष्णव नें विनती कीनी—जो महाराज ! सूरदास जी तौ आज मंगला-आरती के दरसन करिकै परासौली में सगरे सेवकन सों भगवत-स्मरन करिकै गये हैं। तब श्री गुसाईं जी आप जाने, जो भगवत इच्छा सूरदास जी कों बुलायवे की भई है। तासों आज सूरदास जी परासौली कों गये हैं। सो तब श्री गुसाईं जी आप श्रीमुख सों सगरे वैष्णवन सों यह आज्ञा किये—जो 'पुष्टिमारग कौ जहाज' जात है, सो जाकों कछू लैनौ होय, सो लेउ और उहाँ जायकै सूरदास जी कों देखो। सो या भाँति सों जो राजभोग-आरती उपरांत रहत हैं, तौ मैं हू आवत हौं। सो तब सगरे सूरदास जी के पास आये।

[† सो यहाँ 'जहाज' कहिवे कौ आसय यह है, जो जैसे कोई जहाज में काहू व्योपारी नें व्योपार अर्थ अनेक वस्तु जहाज में भरी हैं, सो तैसे ही सूरदास जी के हृदय में अलौकिक वस्तु नाना प्रकार की भरी हैं।]

ता समय सूरदास जी नें श्री गुसाईं जी के और श्रीगोवर्धन-नाथ जी के सरूप में मन लगायकै बोलिवो छोड़ दियो। सो तब श्री गुसाईं जी ने पंद्रह ब्रजवासी दौराये, घड़ी-घड़ी के हमसों सूरदास जी के समाचार आय कहियो। तब ब्रजवासी आयकै श्री गुसाईं जी सो कहे—जो महाराज ! अब तौ सूरदास जी काहू सों बोलत नाँहीं हैं। सो ऐसै करत-करत राजभोग-आरती कौ समय भयो। सो राजभोग-आरती श्री गोवर्धननाथ जी की करिकै श्री गुसाईं जी आपु परासौली जहाँ सूरदास जी हते, तहाँ पधारे।

† भावात्मक कथन है।

तब श्री गुसाईं जी के संग रामदास, कुंभनदास, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास आदि सगरे वैष्णव सूरदास जी के पास आये। तब देखैं तौ सूरदास जी अचेत होय रहे हैं, कछू देह कौ अनुसंधान नाँहीं है। सो तब श्री गुसाईं जी आप सूरदास जी कौ हाथ पकरिकै कहे—जो सूरदास जी! कैसे हो? तब सूरदास जी तत्काल उठिकै दंडवत करिकै कहे—जो बाबा! आये। जो मैं आपु की बाट ही देखत हतौ। या समय आपनें बड़ी कृपा करिकै दरसन दियौ। जो महाराज! मैं आपके सरूप कौ ही चिंतन करत हतौ। ताही समय सूरदास जी नें यह कीर्तन सारंग राग में गायौ। सो पद—

* राग सारंग *

†देखौ-देखौ हरि जू कौ एक सुभाव।
अति गंभीर उदार उदधि प्रभु, जान सिरोमनि-राव॥
राई जितनी सेवा कौ फल, मानत मेरु समान।
समझि दास-अपराध सिंधु सम, बूँद न एकौ जान॥
बदन प्रसन्न कमल पद सन्मुख, दीखत ही हैं ऐसे।
विमुख हू भये कृपा या मुख की, जब देखौं तब तैसे॥
भक्त-विरह-कातर करुनामय, डालत पाछै लागै।
'सूरदास' ऐसे प्रभु कों कत, दीजै पीठ अभागै॥

यह पद सूरदास नें श्री गुसाईं जी के आगै गायौ। तब श्री गुसाईं जी आपु अपने श्रीमुख सों कहे—जो या प्रकार श्री ठाकुर जी आपु अपने भगवदीयन कों दीनता कौ दान करत हैं। सो ताकों पूरन कृपा जानियै। सो दैन्यता रस के पात्र यही हैं।

---

† श्री हरिराय जी की वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति है, किंतु मूल वार्ता में यह पूरा पद दिया गया है।

सो ता समय सगरे वैष्णव श्री गुसाईं जी के पास ठाढ़े हते। उनमें तें चतुर्भुजदास नें कह्यौ—जो सूरदास जी परम भगवदीय हैं। और सूरदास जी नें श्री ठाकुर जी के लचावधि* पद किये हैं। परंतु सूरदास जी नें श्री आचार्य जी महाप्रभुन कौ जस वरनन नाँहीं कियौ‡। यह सुनिकै सूरदास जी कहे—जो मैं तौ सगरौ जस श्री आचार्य जी कौ ही वरनन कियौ है, जो मैं कछु न्यारौ देखतौ तौ न्यारौ करतौ। पर तैनें मोसों पूछी है, सो मैं तेरे पास कहत हौं। सो या कीर्तन के अनुसार सगरे कीर्तन जानियो। सो पद—

※ राग बिहागरौ ※

भरोसौ दृढ़ इन चरनन केरौ।
श्री बल्लभ-नख-चंद-छटा बिनु, सब जग माँझ अँधेरौ॥
साधन और नहीं या कलि में, जासों होत निबेरौ।
'सूर' कहा कहै दुबिधि आँधरौ, बिना मोल कौ चेरौ॥

[†सो या कीर्तन में सूरदास जी नें अपने हृदय कौ भाव खोल दियौ। जो भरोसौ सो जीव कौ विस्वास, दृढ़ चरन के सरन कौ सो मोकों (सूरदास कों) दृढ़ता श्री आचार्य जी के सरन की है। सो श्री आचार्य जी के नख जो दसों चरनारविंद के अलौकिक मनिरूप नख कौ प्रकास। सो ता बिना सगरे त्रिलोकी में अँध्यारौ दीखै है। सो तब भरोसौ दृढ़ जानियै। सो या कलि में श्री आचार्य जी के चरन के आस्रय बिना और उपाय फल-सिद्धि कौ नाँहीं है। तासों मैं

* यहाँ पर भी सूरदास कृत एक लाख पद-रचना का उल्लेख है।

‡ अष्टछाप के अन्य सातों महानुभावों द्वारा श्री बल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी की स्तुति में रचे हुए अगणित पद उपलब्ध हैं, किंतु सूरदास द्वारा रचे हुए केवल दो-एक पद ही मिलते हैं।

† भावात्मक कथन है।

न्यारौ कहा वरनन करौं ? जो श्री गोवर्धनधर में और श्री आचार्य जी के सरूप में भिन्न जो दुविध, तामें तौ मैं अंध हौं ।

सो जैसे श्री कृष्ण और श्री स्वामिनी जी में न्यारो सरूप जानै सो अज्ञानी। सो तैसे श्री गोबर्धनधर और श्री आचार्य जी हैं। सो तिनको मैं बिना मोल को चेरो हौं। सो बिना मोल कहा ? जो केवल भाव करिकै, जैसै रासपंचाध्याई में ब्रजभक्त गोपिका गीत में कहे हैं—जो 'शुल्क दासिका' सो बिना मोल की दासी, अलौकिक जाको मोल नाँहीं । सो काहे तें ? जो भक्ति करिकै प्रभुन सों (अर्थ) चाहै, सो सगरे मोल के दास कहियें। उनकी भक्ति श्रेष्ठ नाँहीं। तासों निष्काम भक्ति सर्वोपरि है। सो ताकों अमोलक दास कहियें। ता भाव के प्रभु बस होंय। सो जैसें पंचाध्याई में श्री भगवान कहे हैं—जो तिहारो भजन ऐसो है, जो मोसों पलटो दियो न जाय। जो मैं सदा तिहारो रिनियाँ[1] रहूँगो। सो यह अमोलक दास के लच्छन हैं। सो यह पद गायो। सो यह पद कैसो है ? जो या कीर्तन के भाव तें, सवालाख कीर्तन सूरदास जी नें किये हैं, सो सबको पाठ होय।]

तब चतुर्भुजदास प्रसन्न भये। पाछें सगरे वैष्णव और श्री गुसाईं जी आपु कहे—जो सूरदास के हृदय को महा अलौकिक भाव है, तासों श्री आचार्य जी आपु सूरदास जी सों 'सागर' कहते। जैसें समुद्र अगाध है, तैसै सूरदास जी को हृदय अगाध है। सो तब चतुर्भुजदास कहे—जो सूरदास जी! तुम बिना अलौकिक भाव कौन दिखावे ? जो अब थोरे में

१. ऋणी

श्री आचार्य जी कौ यह पुष्टिभक्ति मारग है, ताकौ सरूप सुनावो। सो कौन प्रकार सों पुष्टिमारग के रस कौ अनुभव करियै। तब वा समय सूरदास जी नें यह पद गायौ। सो पद–

* राग सारंग *

†भजि सखि–भाव भाविक देव।
कोटि साधन करो कोऊ, तौऊ न मानै सेव॥
धूमकेतु-कुमार माँग्यौ, कौन मारग प्रीति।
पुरुष तें तिय–भाव उपज्यौ, सबै उलटी रीति॥
बसन-भूषन पलटि पहर, भाव सों संजोय।
उलटि मुद्रा दई अंकन, बरन सूधे होय॥
वेद-विधि कौ नेम नहिं, जहाँ प्रेम की पहचान।
ब्रज-बधू बस किये मोहन, 'सूर' चतुर सुजान॥

सो पद सूरदास जी नें सगरे वैष्णवन कों सुनायौ।

[‡सो या पद में यह जताये,जो गोपीजन के भाव सों जो प्रभु कों भजै, सो तिनके भाविक जो श्री गोवर्धनधर, सो तिन गोपीन के भाव कर सखी–भाव सों भजियै। कुंजलीला में सखी-जन कौ अधिकार है। तासों (यहाँ) सखी कहे। और कोटिसाधन वेद के करो, परंतु एक हू सेवा नाँहीं मानत हैं। ताकौ दृष्टांत जो सोलह हजार अग्निकुमारिका ऋचा हैं। धूम–केतु ऐसी सो अग्नि, ताके पुत्र जो सोलह हजार ऋषि, सो वे रामचंद्रजी के सरूप ऊपर मोहित होय दंडकारन्य में कहे–जो हमसों बिहार करो! तब उनसों श्री रामचंद्र जी यह आज्ञा किये—जो ब्रज में तुम स्त्री होय प्रकटोगी, तब तिहारौ मनोरथ पूरन होयगो।

---

† वार्ता में इस पद की आरंभिक पंक्ति है। पूरा पद 'सूर-निर्णय' पृष्ठ २०६ से दिया गया है।

‡ भावात्मक कथन है।

तासों स्त्री कों वेद–कर्म में अधिकार नाँहीं है। और श्री पूर्णपुरुषोत्तम की लीला में मुख्य स्त्री–भाव कौ अधिकार है। यह भक्तिमारग की वेद सों उलटी रीत है। जैसे रास-पंचाध्याई में ब्रजभक्त उलटे आभूषन–वस्त्र धारन करैं, सो लोक में उनसों 'बावरौ' कहैं, सो स्नेह में सर्वोपरि कहियें। जैसै जा छाप में उलटे अच्छर होंय, सो सरीर में सूधे आछे अच्छर होंय, तैसै या जगत में अज्ञानी प्रभु की लीला में चतुर होय सो प्रपंच भूलै, सो ताकौ प्रेम कहियै। मुख्य भक्ति रस में वेद–विधि कौ नैम नाँहीं है। तासों ऐसौ जो प्रेम होय, सो श्री ठाकुर जी कों बस करै, जैसै गोपी जनन नें श्री ठाकुर जी बस किये। सो श्री ठाकुर जी कैसे हैं, जो सब ही कों मोहि डारैं। और सूर हैं, सो काहू सों जीते जाय नाँहीं। और वे ही चतुर सिरोमनि हैं, सो काहू के बस होय नाँहीं। तौऊ प्रेम के बस हैं। सब कूँ भूलि जाँय। यह पुष्टिमारग की भक्ति और पुष्टिमारग कौ सरूप है। सो या भाँति सों सूरदास जी कहे।]

सो तब चतुर्भुजदास आदि सगरे वैष्णव सूरदास जी कों धन्य-धन्य कहे, जो इनके ऊपर बड़ी भगवत कृपा है। तब सूरदास जी चुप होय रहे। तब श्री गुसाईं जी आप सूरदास जी सों पूछ्यौ—जो सूरदास जी ! अब या समय चित्त की वृत्ति कहाँ है ? तब वाही समय सूरदास जी नें एक पद गायौ। सो पद—

* राग बिहागरौ *

बलि–बलि हौं कुँवरि राधिका, नंद–सुवन जासों रति मानी ।
वे अति चतुर, तुम चतुर–सिरोमनि, प्रीति करी कैसै रहै छानी ।।
वे जु धरति तन कनक पीत पट, सो तौ सब तेरी गति ठानी ।
तै पुनि स्याम सहज वे सोभा, अंबर मिस अपने उर आनी ।।
पुलकित अँग अब ही ह्वै आयौ, निरखि देखि निज देह सयानी ।
'सूर' सुजान सखी के बूझै, प्रेम प्रकास भयौ, बिहसानी ।।

पाछै दूसरौ यह पद गायौ—

* राग बिहागरौ *

खंजन नैन रूप-रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते॥
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि-पलटि तार्टक फँदाते।
'सूरदास' अंजन गुन अटके, नतर अबहिं उड़ि जाते॥

सो पद सूरदास जी नें गायौ। पाछै सूरदास जी जुगल सरूप कौ ध्यान करिकै यह लौकिक सरीर छोड़ लीला में जाय प्राप्त भये। ता पाछै श्री गुसाईं जी आप तौ गोपालपुर पधारे। तब सगरे वैष्णवन नें मिलिकै सूरदास जी की देह कौ अग्नि संस्कार कियौ। ता पाछै सगरे वैष्णव श्री गुसाईं जी के पास आये।

[†सो इन सूरदास जी के चार नाम हैं। श्री आचार्य जी आप तौ 'सूर' कहते। जैसै सूर होय सो रन में सों पाछौ पाँय नाँहीं देय, जो सब सों आगै चलै। तैसैई सूरदास जी की भक्ति दिन-दिन चढ़ती दसा भई। तासों श्री आचार्य जी आप 'सूर' कहते। और श्री गुसाईं जी आप 'सूरदास' कहते। सो दास-भाव में कबहू घटै नाँहीं। ज्यों-ज्यों अनुभव अधिक भयौ, त्यों-त्यों सूरदास जी कों दीनता अधिक भई। सो सूरदास जी कों कबहू अहंकार मद नाँहीं भयौ। सो 'सूरदास जी' इनकौ नाम कहे। और तीसरौ इनकौ नाम 'सूरजदास' है। जा श्री स्वामिनी जी के सात हजार पद सूरदास जी नें किये हैं, तामैं अलौकिक भाव वरनन किये हैं। तासों श्री स्वामिनी जी कहते जो ये 'सूरज' हैं। जैसै सूरज सों जगत में प्रकास होय, सो या प्रकार सरूप कौ प्रकास कियौ। सो जब श्री स्वामिनी जी नें 'सूरजदास'

† भावात्मक कथन है।

नाम धरचौ, तब सूरदास जी नें बहौत कीर्तनन में 'सूरज' भोग धरे। और श्री गोवर्धननाथ जी नें पचीस हजार कीर्तन आपु सूरदास जी के करि दिये, तामें 'सूरस्याम' नाम धरे। सो या प्रकार सूरदास जी के चार नाम प्रकट भये। सो सूरदास जी के कीर्तन में ये चारों 'भोग' कहे हैं।]

या प्रकार सूरदास जी मानसी सेवा में सदा मगन रहते। तातें इनके माथे श्री आचार्य जी नें भगवत सेवा नाँहीं पधराये। सो काहे तें? जो सूरदास जी कों मानसी सेवा में फल रूप अनुभव है। सो ये सदा लीलारस में मगन रहत हैं।

सो सूरदास जी की वार्ता में यह सर्वोपरि सिद्धांत है, जो दैन्यता समान और पदारथ कोई नाँहीं है और परोपकार समान दूसरो धर्म नाँहीं है। जो वा बनिया के लिएँ सूरदास जी नें इतनौ स्रम कियौ, पर वाकों अंगीकार करवाय वाकौ उद्धार कर दियौ। तासों श्री आचार्य जी, श्री गुसाईं जी आपु और सगरे वैष्णव जीव मात्र सूरदास जी के ऊपर बहौत प्रसन्न रहते। सो जो कोऊ सूरदास जी सों आयकें पूछतौ, तिनकों प्रीत से मारग कौ सिद्धांत बतावते और उनकौ मन प्रभुन में लगाय देते। तासों सूरदास जी सरीखे भगवदीय कोटिन में दुरलभ हैं। सो वे सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभुन के ऐसे कृपापात्र हते। तातें इनकी वार्ता कौ पार नाँहीं, सो कहाँ ताँईं कहियै।

इति श्री सूरदास की वार्ता श्री गोकुलनाथजी प्रगट किये, ताकौ भाव श्री हरिरायजी कह्यौ, सो संपूरणम।

———

१. छाप, उपनाम।

परिशिष्ट (१)

सूरदास की संस्कृत वार्ता

[रचयिता : मठेश श्रीनाथदेव*]

अथैकः सूरिदासोऽभूत्प्राच्यो ब्राह्मण उन्मदः ।
जन्मान्धोवै महान्प्रज्ञाचक्षुः सुकृतिसत्तमः ॥ १ ॥
तरुणः काव्यकृद्विद्वान् विटानां गायतां वरः ।
भ्रममाणः क्वचित् पूर्वं विश्रुतौ विश्रुतौजसाम् ॥ २ ॥
आचार्याणां दर्शनार्थमरिल्लं‡ ग्राममागतः ।
तेषामपि पुरः कर्षान् फाँकडान समगायत ॥ ३ ॥
तदाकर्ण्योचुराचार्या "रे सूर भगवत्प्रभोः ।
लीलेहितं विश्वहितं वर्ण्यतां गीयता" मिति ॥ ४ ॥
श्रुत्वेति सूरस्तानूचे "भोः न वेद्मीह किंचन" ।
तन्निशम्योचुराचार्याः "यद्येवं तर्हि भोः भवान ॥ ५ ॥
तूर्णमेतु पुरोऽस्माकं स्नात्वा क्वापि जलाशये ।
त्वयि संचारयिष्यामः कृपया भगवद्दृशम् ॥ ६ ॥
यथा लीलेहितं सर्वं तस्य त्वं वर्णयिष्यसि" ।
इत्युक्तः स तथेत्याशु स्नात्वा क्वापि जलाशये ॥ ७ ॥
आयातः शरणं तेषां करणं सर्व-संपदाम् ।
तदा श्रीवल्लभाचार्याः मध्याद्भागवतस्य च ॥ ८ ॥
अनुक्रमं तल्लीलानां जन्मादीनामबोधयन ।
कृष्णस्योपादिशन्नाम-मन्त्रमप्यस्य सिद्धये ॥ ९ ॥
लोकेशूरेण सूरेण सूरिदासेन तत्क्षणे ।
कृत्वा गीतं रसानीतं पदं चक्षुस्तमोपहम् ॥१०॥
श्रुत्वा ते "धन्य सूरेति श्लाघयामासुरेव तम् ।
व्रजभाषा-बंध काव्य-सागरं वल्लभार्यकाः ॥११॥
तदा प्रभृति तत्तस्य सूरस्य वृहतो भुवि ।
गीतानि प्रथितानीह गीयन्ते वैष्णवैर्मुदा ॥१२॥
एतादृक् तत्कृपा पात्रमासीत्सूरः स वैष्णवः ।
भाषाप्रबंधैककृतामग्रणीर्भगवत्प्रियः ॥ १३ ॥

इतिश्री वैष्णववार्ता सुमालिकायां सप्तचत्वारिंशो वार्तामणिः ॥४७॥

---

* इस वार्ता के रचयिता मठेश श्रीनाथदेव दाक्षिणात्य तैलंग ब्राह्मण थे। उनका समय सं० १७७५ से १८३० तक माना गया है। उन्होंने 'चतुःश्लोकी' एवं 'वैष्णव वार्ता मणिमाला' आदि संस्कृत ग्रंथों की रचना की है। 'वैष्णव वार्ता मणिमाला' में श्रीआचार्यजी महाप्रभु के सेवकों की वार्ताओं का कथन किया गया है। सूरदास की उपर्युक्त वार्ता इसी ग्रंथ की है। ‡ गऊघाट के स्थान पर अड़ेल लिखा है

परिशिष्ट (२)

ब्रजभाषा गद्य का विकास और ह्रास

★

पहिले पद्य, फिर गद्य—

प्राय: समस्त भाषाओं के साहित्य का आरंभ लोक-गीत एवं पद्यबद्ध कविता से होता है। उन गीतों और कविताओं के रचयिता अपने मनोविनोद अथवा अपने अंतःकरण के सुख के लिए तथा श्रोताओं के मनोरंजन अथवा उनको आनंद प्रदान करने के लिए अपनी रचनाएँ करते हैं। पद्यबद्ध होने के कारण उन रचनाओं में कुछ नपी-तुली बातें एक विशिष्ट शैली में कही जाती हैं। उन रचनाओं में रचयिता के मन की कुछ भावनाएँ संक्षिप्त रूप से ही व्यक्त की जा सकती हैं, किंतु उसके मन की समस्त भावनाएँ विस्तृत रूप से व्यक्त करने के लिए पद्यबद्ध रचनाओं में अधिक सुविधा नहीं होती है। इसके अतिरिक्त विचार-विमर्श, तथ्य-निरूपण, वाद-विवाद और आलोचना-प्रत्यालोचना के लिए पद्यबद्ध कथन असुविधाजनक भी होता है, अत: इनके लिए गद्य की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार प्राय: सभी भाषाओं के साहित्य में पहिले पद्य और फिर गद्य का आविर्भाव होता है।

हिंदी गद्य के विकास में ब्रजभाषा गद्य का स्थान—

हिंदी भाषा के साहित्यिक विकास के संबंध में भी यही बात हुई है। हिंदी का पद्यबद्ध साहित्य विक्रम की सहस्राब्दी के साथ ही आरंभ हो गया था, किंतु इसके गद्य साहित्य का आरंभ पद्य साहित्य के बहुत समय पश्चात् हुआ। हिंदी साहित्य के इतिहास में पद्यबद्ध रचनाओं का उल्लेख प्राचीन काल के साथ हुआ है और उनके लिए ब्रजभाषा काव्य का अनुपम महत्व माना गया है, किंतु गद्य की रचनाओं का वर्णन आधुनिक काल के साथ हुआ है और उनके लिए ब्रजभाषा की अपेक्षा खड़ी बोली का महत्व माना गया है। हिंदी गद्य के विकास का प्रसंग आते ही पद्य साहित्य की तरह ब्रजभाषा गद्य का उल्लेख नहीं होता है, वरन् खड़ी बोली गद्य की चर्चा होने लगती है। हिंदी गद्य के विकास की मीमांसा के लिए अब तक जितनी रचनाएँ हुई हैं, उनमें खड़ी बोली हिंदी गद्य का ही विवेचन किया गया है। मानों हिंदी गद्य साहित्य में केवल खड़ी बोली गद्य का ही स्थान है और ब्रजभाषा गद्य ने हिंदी गद्य के विकास में कोई योग ही नहीं दिया है!

खड़ी बोली हिंदी गद्य के विकास का क्रम प्रायः उन्नीसवीं शती से आरंभ होता है और इसके लिए पटियाला के रामप्रसाद निरंजनी, प्रयाग के मुंशी सदासुख लाल, लखनऊ के इंशाअल्लाह खाँ, आगरा के लल्लूजी लाल और पटना के सदल मिश्र का नामोल्लेख किया जाता है । खड़ी बोली हिंदी गद्य के उन उन्नायकों के साथ कलकत्ता फोर्ट विलियम कालेज के अध्यापक डा० जान गिलक्रिस्त की भी चर्चा होती है । किंतु यदि हम ब्रजभाषा पद्य की तरह ब्रजभाषा गद्य के विकास पर भी ध्यान दें, तो हमको ज्ञात होगा कि खड़ी बोली हिंदी गद्य के विकास से कई शताब्दी पूर्व ब्रजभाषा गद्य का आरंभ हो गया था । ब्रजभाषा काव्य की तरह ब्रजभाषा गद्य का भी महत्वपूर्ण साहित्य है, और इसकी शताब्दियों पुरानी परंपरा है, जो किसी न किसी रूप में अभी तक चली आ रही है । यह ठीक है कि खड़ी बोली गद्य के विकास-युग में ब्रजभाषा गद्य की यह प्राचीन धारा सूखने लगी थी और राजनैतिक परिस्थिति ब्रजभाषा गद्य की अपेक्षा खड़ी बोली गद्य के अधिक अनुकूल सिद्ध हुई; फिर भी हिंदी गद्य साहित्य के विकास में ब्रजभाषा गद्य का भी स्थान है । आवश्यक सामग्री के अभाव में ब्रजभाषा के गद्य साहित्य पर अभी तक विशेष रूप से नहीं लिखा गया है; किंतु नवीन शोध के फल स्वरूप अब इसके उदय, विकास और ह्रास पर यथेष्ट प्रकाश डाला जा सकता है ।

ब्रजभाषा गद्य का आरंभिक काल—

जैसा हम पहले लिख चुके हैं कि विचार-विमर्श, तथ्य-निरूपण, वाद-विवाद और आलोचना के लिए पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक सुविधा होती है । आजकल के वैज्ञानिक युग की आवश्यकताओं ने गद्य के महत्व की ओर भी अधिक वृद्धि की है; किंतु प्राचीन समय में भी धर्मोपदेश और कथा-वार्ता आदि के लिए पद्य की अपेक्षा गद्य ही उपयुक्त साधन था । जिस प्रकार ब्रजभाषा का पद्य साहित्य अधिकतर धार्मिक व्यक्तियों की रचनाओं से विकसित हुआ है, उसी प्रकार इसका गद्य साहित्य भी धर्मोपदेशकों की वार्ताओं से निर्मित हुआ है ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में राजस्थान के कुछ दान-पत्र मिले हैं, जिनमें विक्रम की तेरहवीं शती तक के प्राचीन गद्य का रूप मिलता है, किंतु उनमें अपभ्रंश और प्राचीन राजस्थानी शब्दों की भी भरमार है । इसके साथ ही साहित्यिक गद्य के रूप में उनका उपयोग भी नहीं किया जा सकता है। ब्रजभाषा गद्य का सर्व प्राचीन रूप हमको गोरखपंथी साधुओं की रचनाओं में मिलता है । इस पंथ के प्रवर्तक महात्मा गोरखनाथ जी थे । खोज रिपोर्टों के

आधार पर 'मिश्रबंधु-विनोद' में महात्मा गोरखनाथ का समय सं० १४०७ के लगभग बतलाया गया है, किंतु डा० रामकुमार वर्मा ने 'श्री ज्ञानेश्वर चरित्र' तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर उनका समय विक्रम की तेरहवीं शती का मध्य काल अर्थात् सं० १२५० निश्चित किया है*। खोज रिपोर्ट में गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध २७ छोटे-बड़े ग्रंथों का उल्लेख किया गया है†। उनमें कुछ ग्रंथ स्वयं गोरखनाथ जी के न होकर, अपने गुरु के नाम से रचे हुए उनके शिष्यों के भी हो सकते हैं।

गोरखनाथ जी के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथों में एक ग्रंथ गद्य का भी है, जिसका उद्धरण खोज रिपोर्ट से 'मिश्र-बंधुविनोद' में दिया गया है। यही उद्धरण हिंदी के प्रायः सभी इतिहासकारों ने भी दिया है—

"सो वह पुरुष संपूर्ण तीर्थ अस्नान करि चुकौ, अरु संपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मननि कौं दै चुकौ, अरु सहस्र जज्ञ करि चुकौ, अरु देवता सर्व पूजि चुकौ, अरु पितरनि कौं संतुष्ट करि चुकौ, स्वर्ग लोक प्राप्त करि चुकौ, जा मनुष्य के मन छन मात्र ब्रह्म के विचार बैठौ।"

इसी प्रकार का एक और उदाहरण है—

"श्री गुरु परमानंद तिनको दंडवत है। हैं कैसे परमानंद, आनंद स्वरूप सरीर जिन्हि को। जिन्हि के नित्य गायै तैं सरीर चेतनि अरु आनंदमय होतु है। मैं जु हौं गोरिप सो मछंदरनाथ को दंडवत करत हौं। हैं कैसे वे मछंदरनाथ, आत्मज्योति निश्चल है अंतहकरन जिनिको, अरु मूलद्वार तैं छह चक्र जिनि नीकी तरह जानैं। अरु जुग काल कल्प इनिकी रचना तत्व जिनि गायो। सुगंध को समुद्र तिनिकौं मेरी दंडवत।

स्वामी तुम्ह तौ सतगुरु, अम्हे तो सिष, सबद एक पूछिबा, दया करि कहिबा, मन न करिबा रोस। पराधीन उपरांति बंधन नांही, सुआधीन उपरांति मुकति नांही, चाहि उपरांति पाप नांही, अचाहि उपरांति पुनि नांही, सुसबद उपरांति पोस नांही, नारायण उपरांति ईसर नांही।"

—गोरखपंथी साहित्य (सं० १४०० के लगभग)

---

* हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (प्र० सं०) पृष्ठ १३२

† खोज रिपोर्ट सं० १६०२, पृष्ठ ४४

पूर्वोक्त अवतरण में गोरखनाथजी का नाम प्रथम पुरुष में आया है, अतः इसे स्वयं गोरखनाथ जी की रचना माना गया है। किंतु यदि इसे उनके किसी शिष्य की भी रचना मानें, तब भी यह अवतरण प्राचीन काल का है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के कारण इसका उतना प्राचीन रूप समझ में नहीं आता, किंतु इसमें प्रयुक्त 'तुम्ह' 'अम्हे' आदि शब्दों के कारण इसमें प्राचीन भाषा के लक्षण मिलते हैं। इस अवतरण के 'पूछिवा' 'कहिवा' आदि प्रयोगों के कारण इसका लिखने वाला आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार राजस्थान का निवासी हो सकता है†। फिर भी शुक्ल जी इसे 'निश्चय पूर्वक ब्रजभाषा का पुराना रूप' और 'सं० १४०० के ब्रजभाषा गद्य का नमूना' मानते हैं‡। यदि गोरखनाथ जी का समय सं० १२५० माना जाय और उपर्युक्त अवतरण उनके किसी राजस्थानी शिष्य की रचना मानी जाय, तब भी इसे सं० १४०० वि० के आस-पास के ब्रजभाषा गद्य का नमूना मानने में कोई बाधा नहीं आती है।

यह सिद्ध है कि गोरखनाथ जी ब्रज के निवासी नहीं थे। वे ब्रज से यथेष्ट दूरी पर स्थित पूर्व अथवा उत्तर के किसी स्थान के रहने वाले थे। उपर्युक्त गद्य का तथाकथित लेखक राजस्थान का निवासी था। उन दोनों गुरु-शिष्यों की निजी बोली ब्रजभाषा नहीं थी। फिर भी उनके द्वारा ब्रजभाषा गद्य में रचना करने से उस समय की प्रचलित भाषा का रूप ज्ञात होता है। जब राजस्थान से लेकर पूर्व तक के निवासियों में ब्रजभाषा गद्य लिखने की पद्धति प्रचलित थी, तब निश्चय पूर्वक उस समय ब्रजभाषा गद्य का प्रचार होगा। खेद है कि विधर्मी आक्रमणकारियों की ध्वंशकारिणी करतूतों से उस समय के अधिकांश ग्रंथ नष्ट हो गये हैं, अतः उस काल का अधिक गद्य साहित्य उपलब्ध नहीं होता है।

वार्ता साहित्य द्वारा ब्रजभाषा गद्य का विकास—

इसके बाद ब्रजभाषा गद्य का जो रूप मिलता है, वह पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य का है। वार्ता साहित्य की रचना विक्रम की सोलहवीं शती से आरंभ होकर किसी न किसी रूप में अब तक हो रही है। ये वार्ताएँ उस समय की उस प्रचलित बोली में रची गई थीं, जो ब्रज के आस-पास बोली

---

† हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३५१

‡ „ „ पृष्ठ ३५१

जाती थी। मध्य देश में प्रचलित सौरसेनी प्राकृत की उत्तराधिकारिणी होने के कारण ब्रज की बोली उस युग में भी गंगा–यमुना के निकटवर्ती विस्तृत भू-भाग के निवासियों की परिचित बोली थी। यही कारण था कि जन साधारण में अपना मत प्रचलित करने के लिए गोरखपंथी साधुओं को इस बोली में गद्य रचना करनी पड़ी और इसी लिए पुष्टि संप्रदाय के आचार्यों को इसे स्वीकार करना पड़ा; यद्यपि वे आचार्य गण दाक्षिणात्य होने के कारण अपने में दक्षिण की भाषा बोलते थे।

पुष्टि संप्रदाय के आचार्यों ने ब्रज में अपने सांप्रदायिक केन्द्र और अपने निवास-स्थान बनाये, अत: उन्होंने वहाँ की बोली भी स्वीकार कर ली। उन आचार्यों के प्रोत्साहन से ब्रज की बोली में भक्ति–साहित्य बनने लगा और सूरदास आदि रस–सिद्ध कवियों ने इसे इतना समृद्ध बना दिया कि अन्य कवियों के लिए भी ब्रज बोली एक आदर्श साहित्यिक भाषा बन गई। साहित्यिक भाषा बन जाने पर भी ब्रज बोली का जन साधारण से संबंध-विच्छेद नहीं हुआ, जैसा प्रायः साहित्यिक भाषाओं का हो जाया करता है। यही कारण था कि पुष्टि संप्रदाय के आचार्यों ने जन साधारण से संपर्क स्थापित करने और उनमें अपना मत प्रचलित करने के लिए उनकी बोली में ही कथा–वार्ता कहने की पद्धति प्रचलित की। वे आचार्य गण धार्मिक ग्रंथों की कथा के अनंतर ब्रजभाषा में अपना उपदेश दिया करते थे, जो उनकी आज्ञानुसार उक्त कार्य के लिए नियुक्त लेखकों द्वारा यथावत् लिख लिये जाते थे। इस प्रकार के लेखबद्ध उपदेश 'वचनामृत' कहलाते हैं, जो पुष्टि संप्रदाय के प्राचीन संग्रहालयों में यथेष्ट परिमाण में उपलब्ध होते हैं। ये वचनामृत उस विशाल वार्ता साहित्य के मूल रूप हैं, जिसने ब्रजभाषा गद्य की एक व्यवस्थित एवं पुष्ट शैली को जन्म दिया है। पुष्टि संप्रदाय की "वार्ताओं की भाषा में स्थिरता और भाव–व्यंजना में अच्छी शक्ति दिखाई पड़ती है§।" यदि कतिपय कारणों से वार्ताओं की यह शक्ति आगे जा कर शिथिल न हो जाती, तो हिंदी गद्य–निर्माण में उनका सर्वोपरि स्थान होता।

जिस पुष्टि संप्रदाय ने ब्रजभाषा साहित्य का इतना उपकार किया है, उसके प्रवर्त्तक महाप्रभु बल्लभाचार्य जी थे। उनका समय सं० १५३५ से १५८७ तक है। उन्होंने अपने सिद्धांतों की पुष्टि और अपने मत के प्रचारार्थ कई संस्कृत ग्रंथों की रचना की थी। उनके रचे हुए ग्रंथों में ब्रह्मसूत्र का 'अणु

§ हिंदी की गद्य शैली का विकास, पृ० ११

भाष्य' और भागवत की 'सुबोधिनी टीका' विशेष महत्वपूर्ण हैं। उनके नाम से प्रसिद्ध '८४ अपराध' नामक एक ब्रजभाषा गद्य ग्रंथ भी उपलब्ध है। यह ग्रंथ सं० १५७० से सं० १५८० के बीच की रचना कहा जाता है; किंतु हमारे मतानुसार यह बाद की रचना है और यह किसी अन्य व्यक्ति का रचा हुआ हो सकता है।

श्री वल्लभाचार्य जी के सुयोग्य पुत्र गो० विट्ठलनाथ जी थे। उनका समय सं० १५७२ से १६४२ तक है। उन्होंने पुष्टि संप्रदाय की सांगोपांग उन्नति की और 'अष्टछाप' की स्थापना द्वारा ब्रजभाषा साहित्य का महान् उपकार किया। उनके प्रोत्साहन से कीर्तन के रूप में वे अमर रचनाएँ प्रस्तुत हुईं, जो ब्रजभाषा साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। गो० विट्ठलनाथ जी ने भी अपने यशस्वी पिता की तरह अनेक ग्रंथों का निर्माण किया था। उन्होंने 'शृंगार रस मंडन' नामक एक संस्कृत ग्रंथ की भी रचना की थी। आचार्य शुक्ल जी प्रभृति हिंदी साहित्य के प्रायः सभी इतिहासकारों ने उनके रचे हुए 'शृंगार रस मंडन' नामक एक ब्रजभाषा गद्य ग्रंथ का भी उल्लेख किया है और उसकी भाषा के उदाहरण के लिए एक अवतरण भी उद्धृत किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि गो० विट्ठलनाथ जी रचित संस्कृत ग्रंथ 'शृंगार रस मंडन' की किसी अन्य व्यक्ति ने टीका की होगी, किंतु स्वयं गोसाईं जी ने किसी ब्रजभाषा गद्य ग्रंथ की रचना नहीं की। उन्होंने समय-समय पर अपने सेवकों को जो पत्र लिखे थे, उनमें से कुछ पत्र उपलब्ध हैं। ऐसा ही एक पत्र बंबई में गट्टूलाल जी के मंदिर में सुरक्षित है। इसका कुछ भाग ब्रजभाषा में भी लिखा हुआ है। यह पत्र सं० १६२० के लगभग का हो सकता है। इस पत्र की भाषा उस समय के ब्रजभाषा गद्य के नमूने के रूप में उपस्थित की जा सकती है। गोरखपंथी साधुओं की रचना के प्रायः २०० वर्ष पश्चात् ब्रजभाषा गद्य का यह सर्व प्राचीन रूप उपलब्ध होता है। उक्त पत्र का ब्रजभाषा संबंधी अंश इस प्रकार है—

"अपरंच तुमारे समाचार तुमारे पत्र तें पाये। सदा भगवत शरण रति रहिय। ऐहिके दुःख प्राप्त हू भये भगवदीच्छा (जानि), तादृशी निज करि भगवदाधीन अपुन हैं, इह जानिके दुःख न करनो। स्व प्रभु चरणारविंद ऐहिके पारलौकिक जानि करि भजियहु। किमधिकं†।'

—गो० विट्ठलनाथ (सं० १५७२ से सं० १६४२)

† तीन जन्मवाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता, ग्रंथ परिचय, पृ० २३

गो० विट्ठलनाथ जी के शिष्यों में अष्टछाप के दो कवि चतुर्भुजदास और नंददास के नाम से भी ब्रजभाषा गद्य की कुछ पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। चतुर्भुजदास कृत 'षट ऋतु की वार्ता' को श्री द्वारकादास परीख ने संपादित कर प्रकाशित कराया है; किंतु वास्तव में यह वार्ता श्री हरिरायजी की रचना है। इसी प्रकार नंददास कृत 'नासिकेत पुराण भाषा' का भी हिंदी साहित्य के इतिहास में नामोल्लेख हुआ है। एक इतिहास में तो उक्त ग्रंथ का अवतरण भी दिया गया है †। किंतु यह अवतरण 'नासिकेतोपाख्यान' नामक एक अन्य ब्रजभाषा गद्य ग्रंथ का है, जिसके कर्त्ता का नाम ज्ञात नहीं है; किंतु इसकी रचना सं० १७६० के उपरांत की है *।

ब्रजभाषा गद्य का व्यापक प्रचार—

गो० विट्ठलनाथ जी के उपरांत ब्रजभाषा गद्य के प्रसिद्ध उन्नायक श्री गोकुलनाथ जी का समय आता है। गोकुलनाथ जी गो० विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र थे। उनका समय सं० १६०८ से सं० १६९७ तक है। वे अपने समय में पुष्टि संप्रदाय के बड़े विद्वान और मार्मिक व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध थे। हिंदी साहित्य के इतिहास में उनके द्वारा रचे हुए ब्रजभाषा गद्य के दो विख्यात ग्रंथ "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" और "दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता" का नामोल्लेख हुआ है और लोक में भी ऐसी ही प्रसिद्धि है। इन ग्रंथों के कारण गोकुलनाथ जी को ब्रजभाषा गद्य का प्रथम वास्तविक लेखक माना जाता है। हिंदी के कई विद्वान आलोचकों ने इन वार्ताओं की छानबीन कर उनके गोकुलनाथ जी कृत होने में संदेह प्रकट किया है। हमने अपने ग्रंथ 'अष्टछाप-परिचय' के पृष्ठ ७४ से ९३ तक में इस विषय की विस्तृत चर्चा कर उक्त संदेह का निवारण किया है।

यह सिद्ध है कि गोकुलनाथ जी सुप्रसिद्ध व्याख्याता और प्रभावशाली वक्ता थे। वे भागवत और सुबोधिनी की कथा के अनंतर वल्लभाचार्य जी और विट्ठलनाथ जी के सेवकों की जीवन-घटनाओं के अनेक प्रसंगों की चर्चा किया करते थे। उस चर्चा से उनका यह अभिप्राय था कि पुष्टि संप्रदाय के शिष्य-सेवक उन महान् भक्तों के आदर्श चरित्रों से शिक्षा प्राप्त करें और तदनुकूल आचरण करें। गोकुलनाथ जी के वे प्रवचन अत्यंत शिक्षाप्रद एवं रोचक होते थे, और वे उनके अंतरंग सेवकों द्वारा तत्काल लिख लिये जाते थे। इस

† श्री चतुरसेन शास्त्री कृत 'हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास' पृ० ३९१
* आचार्य शुक्ल जी कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पृ० ४५३

प्रकार के लेखबद्ध विवरण ही 'वचनामृत' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये वचनामृत गोकुलनाथ जी के नाम से प्रसिद्ध वार्ता पुस्तकों के मूल रूप हैं। उनके गोकुल नाथ जी कृत होने का इतना ही अभिप्राय है कि उनके मूल वचन श्री गोकुल नाथ जी के मुख से निकले थे, किंतु वे उनके शिष्य-सेवकों द्वारा लेखबद्ध किये गये थे। इस प्रकार की मौखिक रचनाओं में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त 'श्रीगुसाईं जी और दामोदरदास जी का संवाद', 'श्री गुसाईं जी की बनयात्रा' चतुर्भुजदास कथित 'खट ऋतु की वार्ता' 'नित्य सेवा प्रकार' '८४ बैठक चरित्र', '२८ बैठक चरित्र', 'श्री गिरिधर जी की बैठकन के चरित्र', 'घरू वार्ता', 'उत्सव भावना', 'रहस्य भावना', 'चरण चिह्न भावना' 'भावसिंधु' 'भावना वचनामृत' आदि अनेक वार्ताएँ गोकुलनाथ जी कृत प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त भावना और हास्य प्रसंग के अनेक वचनामृत भी उपलब्ध हैं। इन वचनामृतों में कहीं-कहीं पर उनके लेखन का समय, स्थान, प्रसंग और दिनांक का भी उल्लेख मिलता है, जिसके कारण उनके द्वारा तत्कालीन इतिहास पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उनके एक वचनामृत में गोस्वामी तुलसीदास जी की ब्रज-यात्रा का वर्णन मिलता है। यह वचनामृत गोकुलनाथ जी की ब्रजभाषा के उदाहरण रूप में भी उपस्थित किया जा सकता है—

"सो तुलसीदास श्री गोकुल आए हते। सो ता दिन रघुनाथ जी महाराज को विवाह हतो। सो ठौर ठौर आनंद होय रह्यो हतो। तब तुलसीदास ने पूछी जो कहा है, ठौर ठौर आनंद दीसत है? तब कोई ब्रजवासी नें कह्यो जानै नांही जो रघुनाथ जी को विवाह है। तब तुलसीदास नें कही जो कौन सों विवाह है श्री रघुनाथ जी को? तब ब्रजवासी नें कही श्री जानकी जी सों विवाह है। सो तुलसीदास श्री रघुनाथ जी और श्री जानकी को नाम सुनत ही विह्वल है गये।"

—श्री गोकुलनाथ (सं० १६०८ से १६६७)

गोकुलनाथ जी के वचनामृत लिपि-प्रतिलिपि के क्रम से सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये और वैष्णव जनों में उनके आधार पर कथा-वार्ताएँ होने लगीं। इस प्रकार ब्रजभाषा गद्य का सर्वत्र प्रचार होने लगा। पुष्टि संप्रदाय से इतर वैष्णव संप्रदायों में भी ब्रजभाषा गद्य की रचनाएँ होने लगीं। राधावल्लभीय संप्रदाय के प्रेमदास द्वारा लिखित 'हित चौरासी' की ब्रजभाषा गद्य में टीका मिली है। प्रेमदास का समय सत्रहवीं शती का मध्य काल माना गया है। उनके गद्य ग्रंथ का उदाहरण देखिये—

"श्री वृंदाबन विषें सरद अरु बसंत रितु विमिश्रित सदा रहे हैं। श्री वृंदाबन सदा फूल्यौ रहे है सो तो बसंत को हेत है, अरु सदा निर्मल रहत है सो सरद को हेत है। और हू जो रितु हैं सो अपने-अपने समय पर सब ही आवें हैं। एक समै श्री प्रीतम जी रात्रि को हिरनि की निकुंज विषे विराजमान है, तहाँ बसंत मिश्रित सरद रितु है*।" — प्रेमदास (सं० १६५० के लगभग)

कृष्णानुयायी संप्रदाओं के अतिरिक्त अन्य वैष्णव संप्रदाओं में भी ब्रजभाषा गद्य का प्रचार होने लगा। इसी प्रकार की एक रचना नाभाजी कृत 'अष्टयाम' की है। यह गद्य ग्रंथ ५६ पृष्ठों का है और इसमें भगवान् रामचंद्र की दिनचर्या का वर्णन है। नाभाजी एक बड़े संत और रामानुयायी महात्मा हो गये हैं। वे अपनी 'भक्तमाल' नामक प्रशंसनीय रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। भक्तमाल की रचना सं० १६६० के लगभग हुई थी और उनकी शिष्य परंपरा में प्रियादास ने सं० १७६६ के लगभग उसकी टीका की रचना की थी। नाभा जी के ब्रजभाषा गद्य ग्रंथ 'अष्टयाम' का उदाहरण इस प्रकार है—

"तब श्री महाराजकुमार प्रथम बसिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये। फिरि अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए। फिरि श्री राजाधिराज जू को जोहार करिकै श्री महेन्द्रनाथ दसरथ जू के निकट बैठत भए।" — नाभादास (सं० १६६० के लगभग)

प्रेमदास और नाभा जी की भाषा तथा पुष्टि संप्रदाय की वार्ताओं की भाषा में बड़ा साम्य है। इससे भी उस काल के ब्रजभाषा गद्य की व्यापकता का पता चलता है। श्री द्वारकादास परीख ने "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" के 'ग्रंथ परिचय' में सं० १६६२ के मार्गशीर्ष कृ० ११ सोमवार को लिखे हुए एक ताम्रपत्र का उल्लेख किया है। यह ताम्रपत्र काशी के सेठ गोकुलदासजी के यहाँ सुरक्षित है। इस ताम्रपत्र मे भी उस समय के ब्रजभाषा गद्य का रूप ज्ञात होता है—

"...निज सेवक जादो जी व्यास ब्राह्मण दीसाबाल को नाम सुनायवे की आज्ञा दीनी। वाराणसी प्रभृति के वैष्णवन को नाम सुनावे। ठाकुर जी की सेवा और पादुकाजी इनके माथे पधराए। श्री श्री संवत १६६२ मिती मार्गशीर्ष कृष्णा ११ सौम्यवासरे ॥श्री॥ "

—ताम्रपत्र (सं० १६६२)

* प्रेमसागर (गद्य साहित्य का विकास) पृ०

विविध विषयों में ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग—

उस समय के वैष्णव संप्रदायानुगामियों के अतिरिक्त अन्य धर्मावलंबियों ने भी विषय-प्रतिपादन के लिए ब्रजभाषा गद्य को स्वीकार कर लिया था। इसकी पुष्टि के लिए बनारसीदास जैन का एक बिना नाम का ग्रंथ उपलब्ध है, जिसकी 'वचनिका' के अंतर्गत गद्य का उल्लेख है। बनारसी दास जी गो० तुलसीदास जी के समकालीन थे। वे आगरा के निवासी थे और सं० १६७० में विद्यमान थे। उनका गद्य परिमार्जित है और उसमें विरामों का उचित स्थान पर प्रयोग हुआ है। इस गद्य ग्रंथ का उल्लेख सं० २००३ के वैशाख मास की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में 'प्राचीन हस्त लिखित हिंदी ग्रंथों की खोज' के अंतर्गत हुआ है। बनारसीदास जी के गद्य का उदाहरण देखिये—

"एक जीव द्रव्य ताके अनंत गुन अनंत पर्याय''जीव पिंड की अवस्था याहि भाँति। अनंत जीव द्रव्य सपिंड रूप जानने। एक जीव द्रव्य अनंत पुद्‌गल द्रव्य करि संयोजित मानने। ताकौ ब्यौरौ। अन्य अन्य रूप जीव द्रव्य ताकी परनति। अन्य अन्य रूप पुद्‌गल की परनति। ताकौ ब्यौरौ। एक जीव द्रव्य जा भाँति की अवस्था लियें नानाकार रूप परिन में सो भांति जीव सों मिलै नहीं।"

—बनारसी दास जैन (सं० १६७० के लगभग)

धार्मिक विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों की रचनाओं में और उनकी टीकाओं में भी ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग होने लगा। इन रचनाओं की भाषा पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य के समान परिमार्जित नहीं है और रचयिता की प्रांतीयता का भी उन पर प्रभाव है। 'भुवन दीपिका' नामक एक सटीक ज्योतिष ग्रंथ उपलब्ध हुआ है, जिसके कर्त्ता का नाम और उसका समय अज्ञात है। उक्त पुस्तक की प्रति सं० १६७१ में लिपिबद्ध की गई थी, अतः पुस्तक की रचना इससे पूर्व हुई होगी। उक्त पुस्तक की टीका के लिए प्रयुक्त गद्य का नमूना देखिये—

"जउ अस्त्री पुत्र तणी प्रछा करई। आठमइ नवमइ स्थानि एकलो शुक्र होई तउ स्वभाव रमतो कहिवउ। जउ बिजर शुभ ग्रह होई, तउ संभोग सुखई कहिवउ। चंद्र सरिसउ होय। शुक्र होइ तउ अधिक द्राव कहिवउ। शुक्र सरिसउ क्रूर ग्रह होइ तउ संभोग पीड़ा कहवी।"

—'भुवन दीपिका' का कर्त्ता (समय सं० १६७१ से पूर्व)

वैकुंठमणि शुक्ल बुंदेलखंड के निवासी थे और ओड़छा के महाराज जसवंत सिंह के आश्रित थे। उन्होंने 'वैशाख माहात्म्य' और 'अगहन माहात्म्य' नामक दो पुस्तकें ब्रजभाषा गद्य में लिखी थीं। उनकी भाषा 'भुवन दीपिका' की भाषा से अच्छी है। उदाहरण देखिये—

"सब देवतन की कृपा तें अरु प्रसाद तें वैकुंठ मनि सुकुल श्री महारानी श्री रानी चंद्रावती के धरम पढ़िवे के अरथ यह जस रूप ग्रंथ वैसाख माहतम भाषा करत भए। एक समय नारदजू ब्रह्मा की सभा तै उठिकै सुमेर पर्वत को गए। पुनि गंगा जी को प्रवाह देखि पृथी विषै आए। तहाँ सब तीरथन को दरसन करत भए, तब श्रीराजा अंबरीष के यहाँ आए। जब राजा अंबरीष नारद की नजीक आए की खबर सुनी तब ही उताइल कै सभा तें उठि आगे होइ लये।"

—वैकुंठमणि शुक्ल (सं० १६८० के लगभग)

महाराज जसवंतसिंह सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'भाषा भूषण' के रचयिता होने के कारण अलंकार शास्त्र के आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने भाषा भूषण के अतिरिक्त कई तत्वज्ञान की पुस्तकें भी कविता में लिखी हैं। उनके रचे हुए 'प्रबोध चंद्रोदय नाटक' के ब्रजभाषा गद्य का नमूना देखिये—

"यह कहिकै चले तितनै सूत्रधार आइ आसीर्वाद दै कै बोल्यो।"

—महाराज जसवंत सिंह (सं० १७०० के लगभग)

मनोहरदास निरंजनी ने ज्ञान चूर्ण बचनिका, सप्त प्रश्न निरंजन, ज्ञान मंजरी, षट् प्रश्नी, वेदांत परिभाषा और षट् प्रदर्शनी निर्णय नामक ज्ञान संबंधी कई ग्रंथों की रचना की थी। उनका समय सं० १७०७ के लगभग है। उनके ब्रजभाषा गद्य का नमूना देखिये—

"ग्रंथ की आदि इष्ट देवता ताको स्वरूप दिखावत है अरु ता ग्रंथ की तीनि विघन ता सिधि करिबै को हिरदै माँग ताकी स्वरूप तवन करिकै नमस्कार करतु है।"

—मनोहरदास निरंजनी (सं० १७०७ के लगभग)

दामोदरदास दादू संप्रदाय के साधु थे। उन्होंने मार्कण्डेय पुराण का गद्य में अनुवाद किया था। उनका समय सं० १७१५ के लगभग है। उनकी भाषा का नमूना इस प्रकार है—

"अथ वंदन गुरुदेव कूं नमसकार, गोबिंदजी कूं नमसकार, सरब परवार के सिध, साध, रिषे, मुनिजन सरब ही कूं नमसकार। अहो तुम सब साध ऐसी बुधि देहु जा बुधि करिया ग्रंथ की बारतिक भाषा अरथ रचना करिए। सरब संतन की कृपा ते समसत कारज सिधि होय जी।"

—दामोदरदास (सं० १७१५ के लगभग)

ब्रजभाषा गद्य का स्वर्ण काल—

यद्यपि ब्रजभाषा गद्य का थोड़ा-बहुत प्रचार सर्वत्र हो रहा था, तथापि उसकी यथेष्ट उन्नति पुष्टि संप्रदाय में ही हुई। गोकुलनाथ जी ने वार्ताओं का जो क्रम चलाया था, वह ब्रजभाषा गद्य की उन्नति का प्रधान कारण हुआ; किंतु वह क्रम विशेषतया पुष्टि संप्रदाय में ही सीमित था। काँकरौली सरस्वती भंडार में सं० १७४६ की लिखी हुई एक वार्ता पुस्तक है। यह पुस्तक किसी गोविंददास ब्राह्मण की प्रति से लिपिबद्ध की गयी है। उक्त पुस्तक के एक उल्लेख से ज्ञात होता है कि गोविंददास ब्राह्मण गोकुलनाथ जी के समय में विद्यमान था। गोकुलनाथ जी का देहावसान सं० १६९७ में हुआ था, अतः उक्त गोविंददास की पुस्तक की रचना सं० १६९० के लगभग हुई होगी। उक्त पुस्तक के निम्न उद्धरण में उस समय के ब्रजभाषा गद्य का रूप देखिये—

"यों करत बहुत बरस बीते। तब नेत्र को प्रकार भयो। तब श्री रायजू सों कही जो पोथी पेटी में है सो लावो। तब श्री राय जू ने पेटी खोलिकें पोथी हाथ में दीनी। लेकर नेत्र सों लगाई। फेरि राय जू कों दीनी। राय जू ने पेटी में धरी। सो नित्य यों करे। सो एक दिवस राय जू ने देखी सो नीकी लागी। तब इनके प्रिय श्री गोपाल जू हते सो बात राय जू ने कही हमारे वैष्णवन की बात है। तब गोपाल जू ने कही जो देखिए। तब इन नांही कही। वह देखी न जाय अन्ना जी बहुत जतन करि राखत है। तारे में है। और सो पास मांगत है. तब आनि देत हूं।"

—गोविंददास ब्राह्मण (सं० १६९० के लगभग)

उस समय तक ब्रजभाषा गद्य बराबर उन्नति के पथ पर अग्रसर था। उस समय की वार्ताओं में ब्रजभाषा गद्य का बड़ा सुंदर और निखरा हुआ रूप दिखलाई देता है।

श्री हरिराय जी द्वारा ब्रजभाषा गद्य की सर्वांगीण उन्नति—

ब्रजभाषा गद्य की सर्वांगीण उन्नति का श्रेय श्री हरिराय जी को है। उन्होंने गोकुलनाथ जी के पश्चात् ब्रजभाषा गद्य की सर्वाधिक उन्नति की थी। हरिराय जी का समय सं० १६४७ से सं० १७७२ तक है। इससे ज्ञात होता है कि वे अत्यंत दीर्घजीवी हुए। हरिराय जी गोकुलनाथ जी के निकट संबंधी अर्थात् उनके ज्येष्ठ भ्राता गोविंदराय जी के पौत्र थे। हरिराय जी बाल्य काल से ही गोकुलनाथ जी के सत्संग में रहे थे। उन्होंने गोकुलनाथ जी के वचनामृत रूप मौखिक वार्ताओं का संकलन और संपादन किया था। उन्होंने गोकुलनाथ जी कथित 'चौरासी' और 'दोसौ बावन' वार्ताओं का संपादन और विस्तार किया तथा उनके प्रसंगों की पूर्ति के लिए अपनी 'भाव' नामक टिप्पणी लगाई, जिनके कारण वे वार्ता पुस्तकें सर्वांगपूर्ण होकर भक्त जनों के सन्मुख उपस्थित की गईं।

हरिराय जी ने ब्रजभाषा गद्य की अनेक रचनाएँ की थीं, जिनमें मुख्य ये हैं—

निज वार्ता, महाप्रभु जी की प्रागट्य वार्ता, श्री गोकुलनाथ जी का बैठक चरित्र, मार्ग स्वरूप सिद्धांत, पुष्टि दृढ़ाव, चौरासी वैष्णवन की वार्ता (भावना वाली) दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता (भावना वाली)।

इनके अतिरिक्त उन्होंने भावना की और भी बहुत सी गद्य पुस्तकें लिखी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

द्वादस निकुंज की भावना, सात स्वरूपन की भावना, महाप्रभु जी की प्रागट्य वार्ता (भावना वाली), निज वार्ता (भावना) घरू वार्ता (भावना) बसंत होरी की भावना, छप्पन भोग की भावना, छाक बीड़ी की भावना, सेवा भावना, नित्य लीला भावना, बनयात्रा की भावना, श्रीनाथ द्वारे की भावना, नवग्रहों की भावना, सात बालकन के स्वरूपन की भावना, स्वामिनी चरण चिह्न भावना, आदि।

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि हरिराय जी ने ब्रजभाषा गद्य की उन्नति और प्रचार के लिए महान् कार्य किया था। खेद है कि हिंदी गद्य के इतने बड़े लेखक और प्रचारक होते हुए भी हिंदी साहित्य के इतिहास में उनके महत्व का यथार्थ मूल्यांकन तो क्या, उनके नाम का भी उल्लेख नहीं है! आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डा० श्यामसुंदरदास के सुप्रसिद्ध इतिहास ग्रंथों में हरिराय जी का नाम तक नहीं है। श्री मिश्रबंधुओं और श्री रसाल जी के इतिहास ग्रंथों में उनका विवरण अपूर्ण एवं भ्रमात्मक है।

हरिराय जी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य गोकुलनाथ जी कथित वार्ताओं के प्रसंगों की पूर्ति और उन पर अपनी 'भाव' नामक टिप्पणी लगाना था। इस प्रकार की वार्ताएँ भावना वाली वार्ताएँ कहलाती हैं। भावना वाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता सं० १७५२ की प्रति के आधार पर अभी हाल में श्री द्वारकादास परीख द्वारा प्रकाश में आई है। सूरदास की प्रस्तुत वार्ता इसी ग्रंथ से संकलित की गई है। हरिराय जी की रचनाओं का ज्ञान हिंदी संसार को सबसे पहिले सं० १९९६ में हुआ, जब श्री द्वारकादास परीख ने काँकरौली विद्या विभाग द्वारा 'प्राचीन वार्ता रहस्य' का प्रथम भाग प्रकाशित कराया।

हरिराय जी के कथात्मक गद्य का नमूना देखिये—

"सो एक दिन श्री गोकुलनाथजी चौरासी वैष्णवन की वार्ता करत कल्याण भट्ट आदि वैष्णवन के संग रस मग्न होइ गये। सो श्री सुबोधिनी जी की कथा कहन की सुधि नांही। सो अर्धरात्रि होई गई, तब एक वैष्णव ने श्री गोकुलनाथ जी सों बिनती करी—'जो महाराजाधिराज! आज कथा कब कहोगे, अर्ध रात्रि गई? तब श्री मुख तें श्री गोकुलनाथ जी ने कही, जो आज कथा कौ फल कहत हैं। वैष्णव की वार्ता में सगरो फल जानियो। वैष्णव उपरांत और कछु पदारथ नांही है।"

अब उनके तथ्य निरूपणात्मक गद्य का नमूना देखिये—

"या वार्ता में यह सिद्धांत भयौ जो अहंकार, गर्व होइ, तहां तांई श्री ठाकुरजी अनुभव न जतावें और अपने भक्तन कों अहंकार आपु ही कृपा करिके दंड देइ छुड़ावत हैं। और वैष्णव सों कबहू हीन कार्य होइ नांही। और कदाचित भगवदीय सों खोटो काम कछू भयौ होइ तो मन में दोष बुद्धि न करनो। भगवदीय ऐसौ करै नांही। वामें भगवत्कृति जाननी और जीव मात्र ऊपर दया राखनी। चोर होइ, चुगल होइ, ताहू को अपने बस तें बचावनो, रक्षा करनी। यह वैष्णव कौ धर्म है।"

—श्री हरिराय (सं० १७५२)

कैसी परिष्कृत, पुष्ट और व्यवस्थित गद्य-शैली है! यह हरिराय जी के उत्तर जीवन की रचना है। वे अत्यंत दीर्घजीवी हुए थे। उन्होंने १२५ वर्ष की पूर्ण आयु प्राप्त की थी। उनका रचना काल सं० १६७० से सं० १७७२ तक है। इस प्रकार पूरे सौ वर्ष तक उन्होंने ब्रजभाषा गद्य की उन्नति के लिए

कार्य किया था। उन्होंने प्रचुर परिश्रम और अमित अध्यवसाय से ब्रजभाषा गद्य को साधारण अवस्था से प्रौढ़ावस्था तक पहुँचा दिया, अतः उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा गद्य की कई अवस्थाओं का रूप दिखलाई देता है।

श्री गोपेश्वर जी हरिराय जी के छोटे भाई थे। उनका समय सं० १६४६ से सं० १७५० तक के आस-पास का है। उन्होंने हरिराय जी कृत संस्कृत ग्रंथ 'शिक्षापत्र' की ब्रजभाषा गद्य में टीका की थी। उनकी भाषा का नमूना देखिये—

"भक्त के दुःख कों सहन नांही करि सकै—ऐसे प्रभु वाही समय वा प्रतिबंध कों निश्चय निवृत करें। काहे तें—जो अपन सों कछु न बनें तहाँ हरि ही रक्षक हैं, ऐसौ ही श्री महाप्रभु जी कौ वचनामृत है।"

—श्री गोपेश्वर (सं० १६४६ से १७५० के लगभग)

श्री हरिराय जी के समकालीन सेवक का एक पत्र श्री बसंतराम शास्त्री अहमदाबाद वालों के पास है, जिसका कुछ अंश ब्रजभाषा में है। उक्त पत्र मे उस समय की भाषा का रूप ज्ञात होता है—

"तुम्हारो पत्र खेपिया कासिद के हाथ समधियानें तें आयो है सो हम तुम पास पठयो है। जैसो जाने तैसो उत्तर लिखियो। हमवारो पत्र हू तुमकों पठयो है, पाछें जो तुम्हारो विचार होइ सो करियो। मथुरानाथ भाई के संग ठाकुर पास है, ठाकुर राणा के देस में तलाव के पास है, राणा दूसरो गाँव देन कह्यो है नयो, तहाँ बैठेंगे, आज हूँ बैठे नांही ॥ किमधिकं ॥†"

—हरिराय जी का समकालीन सेवक (सं० १७२८ से १७८० के बीच में)

काका बल्लभ जी के '५२ वचनामृत' प्रसिद्ध हैं, जो छप चुके हैं। उनका समय सं० १७०३ में १७८० तक है। श्री ब्रजभूषण जी का समय सं० १७२६ के लगभग है। उनके रचे हुए नित्य विनोद, नीति विनोद, श्री महाप्रभु जी तथा गुसाईं जी का चरित्र, श्रीद्वारकाधीश जी की प्राकाट्य वार्ता आदि हैं।

श्री द्वारकेश जी भावना वालों का समय सं० १७७५ के आस-पास है। उनके रचे हुए भावना के कई ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—श्रीनाथ जी आदि सात स्वरूपन की भावना, धनुर्मास भावना, उत्सव भावना, भाव भावना, भाव संग्रह आदि। उनकी भाषा का उदाहरण देखिये—

† लीला भावना वाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता (ग्रंथ परिचय) पृष्ठ २५

"तुलसीदास श्री गोकुल में आए, तब श्री गुसाईं जी सों कहे सीता जी सहित श्री रामचंद्र जी के दर्शन होय यह कृपा करो। तब ही रघुनाथ जी को व्याह भयो हतो। सो जानकी बहू जी पास ठाड़े हते। तब आप आज्ञा दिये, जो तुलसीदास कों दर्शन देऊ। तब श्रीरघुनाथ जी जानकी बहू जी वैसो ही दर्शन दिये।"

—श्री द्वारकेश (सं० १७७५ के लगभग)

ब्रजभाषा गद्य के ह्रास का सूत्रपात—

श्री हरिराय जी के समय में ब्रजभाषा गद्य की बराबर प्रगति हो रही थी। यद्यपि वह प्रगति पुष्टि संप्रदाय से संबंधित क्षेत्रों में विशेष रूप से हुई थी, तथापि अन्य क्षेत्रों में भी उसका उन्नत रूप दिखलाई देता था। यदि प्रगति का वह क्रम उसी प्रकार चलता रहता, तब निश्चय पूर्वक हिंदी के गद्य साहित्य में आज ब्रजभाषा का भी आदरपूर्ण स्थान होता। किंतु राजकीय कारणों से कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई, जिसने उस प्रगति को ही नहीं रोक दिया, वरन् पुष्टि संप्रदाय की संगठन शक्ति को भी छिन्न-भिन्न कर दिया!

श्री हरिराय जी के अंतिम समय में इस देश की धार्मिक स्थिति में भयानक परिवर्तन होने लगा। वह समय हिंदू धर्म के प्रबल विद्वेषी औरंगजेब के अभ्युदय का था। अकबर से लेकर शाहजहाँ के राज्यकाल तक हिंदू धर्म के विभिन्न संप्रदाय अपने-अपने सिद्धांतों के अनुसार बिना किसी विशेष रुकावट के चलते रहे। आरंभ में औरंगजेब ने भी इसमें कोई बाधा उपस्थित नहीं की, किंतु जैसे ही उसने अपने राज्य के शासन-सूत्र दृढ़तापूर्वक संभाले, वैसे ही उसने अपने पूर्व पुरुषों की धार्मिक नीति के विरुद्ध आचरण करना आरंभ किया। उसने सं० १७२६ से देव-मंदिरों और देव-मूर्तियों को नष्ट कर हिंदुओं को बल पूर्वक मुसलमान बनाने की नीति स्वीकार की। उस नीति के कारण धर्मप्राण हिंदू जान-माल और उनसे भी अधिक बहुमूल्य अपनी देव-मूर्तियों को लेकर सुरक्षित स्थानों की ओर प्रस्थान करने लगे।

गो० विट्ठलनाथ जी के समय से पुष्टि संप्रदाय के गोस्वामी वर्ग संगठित रूप से ब्रज में ही निवास कर रहे थे। उनके देव-मंदिर और सांप्रदायिक केन्द्र गोकुल और गोवर्धन में थे, तथा उनका समस्त सांप्रदायिक वैभव भी उन्हीं स्थानों में केन्द्रित था। किंतु जब औरंगजेबी अन्याचार की आँधी उठी, तब उससे त्राण पाने के लिए पुष्टि संप्रदाय की देव-मूर्तियाँ गोकुल और गोवर्धन से हटा कर गुप्त रूप से हिंदू राजाओं के राज्यों में ले

जाई जाने लगीं। उस भगदड़ में जो आवश्यक सामान सुगमता पूर्वक साथ में ले जाया जा सकता था, वह ले जाया गया; शेष वहीं पर छोड़ दिया गया। ऐसी असाधारण परिस्थिति में धार्मिक ग्रंथ-राशि का अधिकांश भाग व्रज में रह गया, जो बाद में धर्मांध यवन सैनिकों द्वारा नष्ट कर दिया गया! इस प्रकार पुष्टि संप्रदाय का बहुत सा प्राचीन साहित्य नष्ट हो गया; किन्तु देव-मूर्तियाँ किसी प्रकार सुरक्षित रह गईं।

उसी गड़बड़ी में श्रीनाथ जी का स्वरूप सं० १७२६ की शरद पूर्णिमा को गोवर्धन से आगरा होता हुआ मेवाड़ राज्य में पहुँचाया गया, जहाँ नाथद्वारा में वह अब तक विद्यमान है। उस समय श्री हरिराय जी भी श्रीनाथ जी के स्वरूप के साथ गोकुल से मेवाड़ चले गये। उस राजकीय उथल-पुथल ने पुष्टि संप्रदाय की बड़ी अवनति की।

वार्ताओं का जो सुंदर रूप बन रहा था, उसमें रोक लग गई और विस्थापित गोस्वामी वर्ग कथा-वार्ता और धर्मोपदेश की अपेक्षा अपनी स्थिति को ही दृढ़ करने में लग गये। वार्ताओं पर श्री हरिरायजी के 'भाव' की पूर्ति संभवतः मेवाड़ जाने के उपरांत हुई, अतः वह सं० १७२९ के पश्चात् की ज्ञात होती है, क्यों कि उक्त संवत् में रचे हुए 'संप्रदाय कल्पद्रुम' में हरिराय जी के ग्रंथों की चर्चा होते हुए भी उनकी भावात्मक रचनाओं का उसमें उल्लेख नहीं है। हरिराय जी सं० १७७२ तक इस भूतल पर रहे। उनका देहांत भी संभवतः मेवाड़ में ही हुआ।

श्री हरिराय जी ने जीवन भर प्रयास कर व्रजभाषा गद्य की जो व्यवस्थित और शक्तिशाली शैली निर्मित की थी, वह उनके उपरांत अव्यवस्थित और शिथिल हो गई। पुष्टि संप्रदाय के गोस्वामी वर्ग औरंगजेबी अत्याचार के कारण भिन्न-भिन्न स्थानों में जा बसे थे, जहाँ से वे सामूहिक रूप से कोई कार्य करने में असमर्थ थे। इस प्रकार व्रजभाषा गद्य के प्रधान क्षेत्र पुष्टि संप्रदाय में ही इसकी अवनति आरंभ हुई। हरिराय जी के पश्चात् पुष्टि संप्रदाय के जिन गोस्वामियों ने वार्ताओं की रचना की थी, उनमें भाषा का वह प्रवाह और भाव-व्यंजना की वह शक्ति नहीं है। पुष्टि संप्रदायी क्षेत्र से बाहर की गद्य रचनाओं में पहले भी कोई बल नहीं था और बाद में भी वे कोई अच्छा रूप उपस्थित नहीं कर सकीं।

पुष्टि संप्रदायी क्षेत्र से बाहर की रचनाएँ अधिकतर टीकाओं से संबंधित थीं। उनकी भाषा इतनी दुर्बोध और जटिल होती थी और उनकी

सं० १८०० के लगभग ललितकिशोरी और ललितमोहिनी निंबार्क संप्रदाय की टट्टी शाखा के गुरु-शिष्य होगये हैं। उन्होंने 'श्रीस्वामीजी महाराज की बचनिका' नामक ४७ पृष्ठों की एक रचना ब्रजभाषा गद्य में की थी। उसकी भाषा का नमूना यह है—

" वस्तु को दृष्टांत—मलयगिरि को समस्त बन वाकी पवन सों चंदन ह्वै जाय। वाके कछू इच्छा नाहीं। बाँस और अरंड सुगंध न होय। सत्संग कुपात्र को असर न करै।"

—श्री ललितकिशोरी और ललितमोहिनी (सं० १८०० के लगभग)

अमरसिंह कायस्थ ने ब्रजभाषा गद्य में बिहारी सतसई की एक टीका 'अमरचंद्रिका' के नाम से लिखी थी। इसकी भाषा का नमूना यह है—

" यह कवि को बिनती जान प्रगटत अपनी अधमता अधिकाई धुनि आंन जितौ अधम तितनी बड़ी भव बाधा यह अर्थ तिहि हरि वे को चाहिये। कोऊ बड़ो समर्थ नर बाधा कै सुई हरत, सुर बाधा ब्रह्मादि ब्रह्मादिक की बाधा कौं हरत जु स्याम, अगाध लखि राधा तन स्याम की बाधा रहत ना कोई, याते मो बाधा हरो।"

—अमरसिंह कायस्थ (सं० १८०० के लगभग)

सं० १८२० के लगभग ब्रजभाषा गद्य में लिखा हुआ मुगल बादशाहों के संक्षिप्त इतिहास की एक रचना प्राप्त हुई है। यह ४० पृष्ठों में है। इसकी भाषा इस प्रकार है—

"राजा मानसिंह उड़ीसा सूबा में पातस्याह को सिक्कौ पुतवो चलायो। वहाँ के पठाणन कि पेसकस हजूरी ल्याये। कंधार को पातस्याह ईरान की पातस्याह की फौज सुँ भाजि हुजूरि आयो, पंच हजारी भयो, मुलतान के सूबा जागीर में पायो। पातस्याही फौज जाय कंधार लीनी।"

— अज्ञात (सं० १८२० के लगभग)

रामहरि ने सं० १८२४ में रूप गोस्वामी कृत 'विदग्ध माधव' नाटक के आधार पर ब्रजभाषा गद्य में एक रचना की थी। इसकी भाषा का उदाहरण यह है—

" श्री वृंदावन नित्य विहार जानि कै उजीन नगरी को बास छाड़ि करि संदीपन रिपीस्वर की माता ताको नाम पुर्णमासी कहावै

तिन इहाँ आइ वृंदाबन बास कियो अरु पोतो एक ले आई। ता पोतो को नाम मधुमंगल कहावै। सो मधुमंगल ग्वालन में गाइ चरावै, श्री कृष्ण को बार-बार हँसावै, विनोद करै तातें अति प्रिय लागै।"

— रामहरि (सं० १८२४)

बख्तेश राजा रत्नेश के भाई शत्रुजित के आश्रित था। उसने मतिराम कृत 'रसराज' पर सं० १८२८ में टीका लिखी थी। उसकी भाषा का उदाहरण देखिये—

"नाइका नाइक जो है ताके आलंबित कहैं आधार शृंगार रस होत है। कौन प्रकार कै आधार कहैं देपकैं तातैं कवि कहत है कै नाइका नाइक कौ बरनन करत हौं अपनी बुद्धि के अनुसार तैं ग्रंथ को नाम रसराज है सो रस नाइका नाइक के आधीन होत है।"

—बख्तेश (सं० १८२८)

अग्रनारायण दास और वैष्णव दास नामक दो व्यक्तियों ने नाभादास और प्रियादास कृत ' भक्तमाल ' की ब्रजभाषा गद्य में टीका लिखी थी। इस टीका की दो प्रतियाँ भिन्न-भिन्न नामों से भिन्न-भिन्न संवतों में लिपिबद्ध प्राप्त हुई हैं। एक प्रति सं० १८२९ की लिखी हुई है। इसका नाम 'भक्तमाल प्रसंग ' है। दूसरी प्रति सं० १८४४ की है। इसका नाम 'भक्ति रस बोधिनी' है। इसकी भाषा का उदाहरण देखिये—

" तब श्री कृष्ण अघोर बंसी बजाई। व्रज गोपकानि सुनि राधिका, ललिता विशापादि गोपी आई। रास मंडल रच्यो, राग रंग नृत्य गान आलाप आलिंगन संभासन भया। उहाहि सर में जल क्रीड़ा स्नान गोपी कुच कुंकुम केशर छुटयो सो गोपीचंदन भयौ, गोपी तलाई भई वृजि प्राप्ति। "

—अग्रनारायण दास और वैष्णव दास (सं० १८२९ और १८४४)

जयपुर के महाराज सवाई प्रतापसिंह की आज्ञानुसार लाला हीरालाल ने सं० १८५२ में 'आईन अकबरी की भाषा वचनिका' नामक एक गद्य पुस्तक लिखी थी। इसकी भाषा ब्रजभाषा है, किंतु इसमें अरबी-फारसी के शब्द अधिक हैं। उदाहरण देखिये—

" अब शेख अबल फजल ग्रंथ को करता प्रभु का निमस्कार करिकै अकबर बादस्याह की तारीफ लिखने को कसत करै है। अरु कहै है याकी बड़ाई अरु चेष्टा अरु चिमत्कार कहाँ तक लिखूँ। कही

जात नाहीं। तातें याके पराक्रम अरु भाँति-भाँति के दसतूर वा मनसूबा दुनिया में प्रगट भए, ताको संखेप लिखत हैं ”

—हीरालाल (सं० १८५२)

काव्य ग्रंथों का आशय प्रकट करने के लिए जो टीकाएँ ब्रजभाषा गद्य में लिखी गईं, वे अत्यंत निराशाजनक थीं। उनमें न तो शब्द-संगठन की व्यवस्था थी और न भाव-प्रकाशन की शक्ति। ये टीकाएँ मूल से भी अधिक क्लिष्ट और दुर्बोध हैं। उदाहरण के लिए 'शृंगार शतक' के निम्न श्लोक की टीका देखिए—

श्लोक—उन्मत्त प्रेम संरंभादालभन्ते यदंगनाः।
तत्र प्रत्यूहमाधातुं ब्रह्मापि खलु कातरः ॥

टीका—“अंगना जु है स्त्री सु। प्रेम के अति आवेश कर। जु कार्य करना चाहति है ता कार्य विषै। ब्रह्माऊ। प्रत्यूहं आधातुं। अन्तराउ कीबे कहँ। कातर काइरु है। काइरु कहावै असमर्थ। जु कछु स्त्री करयो चाहैं सु अवस्य करहिं। ताको अन्तराउ ब्रह्म पहँ न करयो जाइ और की कितीक बात।”

केशवदास कृत 'रामचंद्रिका' के निम्न पद्य की टीका देखिये—

दोहा—राघव-सर लाघव गति, छत्र मुकुट यों हयो।
हंस सबल अंसु सहित, मानहु उडिकै गयो ॥

टीका—“सबल कहें अनेक रंग मिश्रित हैं, अंसु कहें किरण जाके ऐसे जे सूर्य हैं तिन सहित मानों कलिंद गिरि शृंग तें हंस कहें हंस समूह उड गयो है। यहाँ जाति विषै एक वचन है। हंसन के सदृश श्वेत छत्र है और सूर्य के सदृश अनेक रंग जटित मुकुट हैं।”

—जानकीप्रसाद (सं० १८७२)

इसी प्रकार अन्य काव्य-ग्रंथों की टीकाएँ भी हुई हैं। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में इन टीकाओं की “भाषा ऐसी अनगढ़ और लद्धड़ होती थी कि मूल चाहे समझ में आ जाय, पर टीका की उलझन से निकलना कठिन समझिये !”

सरदार कवि ने आधुनिक काल में केशवदास और बिहारीलाल के ग्रंथों पर टीकाएँ लिखी हैं, किंतु उनके गद्य की भाषा भी वही पुराने ढर्रे की है। अभिप्राय यह है कि टीकाओं में ब्रजभाषा गद्य ने कभी सफलता प्राप्त नहीं की।

ब्रजभाषा गद्य के ध्वंसावशेषों पर खड़ी बोली गद्य का निर्माण—

जैसा पहले लिखा जा चुका है, ब्रजभाषा प्राचीन समय से हिंदी की साहित्यिक भाषा होते हुए भी एक बड़े भू-भाग के निवासियों की बोल-चाल की भाषा भी रही है। इसका क्षेत्र मथुरा, आगरा और ग्वालियर के निकटवर्ती बड़ा भू-भाग है। इसी क्षेत्र के निकट दिल्ली, मेरठ, सहारनपुर और अंबाला के आस-पास हिंदी का एक दूसरा रूप, जिसे आजकल हम खड़ी बोली कहते हैं, बोल-चाल की भाषा के रूप में प्रचलित है। हिंदी भाषा के इन दोनों रूपों का अस्तित्व प्रायः एक सहस्र वर्ष से चला आ रहा है। जब मुसलमान स्थायी रूप से इस देश में बसने लगे, तब उनको यहाँ की भाषा सीखने की भी आवश्यकता हुई, ताकि वे यहाँ के निवासियों से अपना संपर्क स्थापित कर सकें और राज्य-शासन तथा कार्य-व्यवहार को सुगमतापूर्वक चला सकें। मुसलमानों का प्रधान केन्द्र सदा से दिल्ली रहा है, अतः वे वहाँ के निकटवर्ती भू-भाग में प्रचलित खड़ी बोली के संपर्क में आये और उसी में अपना कार्य-व्यवहार करने लगे। मुसलमानी शासन से संबंधित राज-दरबारी, सैनिक, व्यापारी और उच्च श्रेणी के अधिकारियों ने भी पारस्परिक व्यवहार के लिए खड़ी बोली को स्वीकार कर लिया। मुसलमानों के संपर्क से जब इस बोली में अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों का प्रवेश होने लगा और मुसलमानी संस्कृति एवं फारसी व्याकरण का इस पर प्रभाव पड़ा, तब खड़ी बोली की एक पृथक् शाखा का जन्म हुआ, जिसे हम आजकल उर्दू कहते हैं।

इस प्रकार दिल्ली आगरा और मथुरा के आस-पास हिंदी भाषा के दो रूप अपने-अपने क्षेत्रों की बोलियाँ होने के अतिरिक्त दूसरे प्रकारों से भी उन्नति की ओर बढ़ रहे थे। एक ब्रजभाषा, जो धर्मोपदेशक, संत-महात्मा और कवि-समुदाय द्वारा उन्नति कर रही थी; दूसरी खड़ी बोली, जो मुसलमानी शासन से संबंधित शिष्ट वर्ग के कारण अपना प्रभाव बढ़ा रही थी। ब्रजभाषा का संबंध अधिकतर साहित्य से था और खड़ी बोली का संबंध राज्य शासन और उससे संबंधित शिष्ट समुदाय से। यही कारण था कि चाहें हिंदू हो और चाहें मुसलमान, यदि वह यहाँ की बोली में काव्य-रचना करता, तब वह ब्रजभाषा को अपनाता था और यदि उसे शासन से संपर्क स्थापित करना होता, तब वह खड़ी बोली की ओर झुकता था। यद्यपि खुसरो, कबीर, रहीम, भूषण, सूदन और सीतल आदि कवियों की कुछ रचनाएँ खड़ी बोली में भी मिलती हैं, तथापि उस समय खड़ी बोली का साहित्यिक प्रयोग नाम मात्र को था।

हिंदू धर्म के सांप्रदायिक उपदेशकों, संत–महात्माओं, कवियों और काव्य–रसिकों तथा गवैयों और संगीतानुरागियों के कारण ब्रजभाषा का प्रचार अपने क्षेत्र से बढ़ कर राजस्थान, गुजरात एवं समस्त उत्तरी भारत में हो गया। मुसलमानी शासन के विस्तार से खड़ी बोली का प्रभाव भी व्यापक रूप से बढ़ने लगा। यहाँ तक कि दक्षिण में भी उसी कारण से खड़ी बोली का प्रचलन होने लगा। जब दिल्ली में मुगल साम्राज्य की शक्ति क्षीण हो गई, तब मुगल दरबार के अमीर-उमराव ने पूर्व के लखनऊ, मुर्शिदाबाद आदि स्थानों में और दक्षिण के हैदराबाद आदि स्थानों में अपने-अपने राज्य स्थापित किये। तब वहाँ पर खड़ी बोली का और भी अधिक प्रभाव बढ़ गया। यह आश्चर्य की बात है कि खड़ी बोली उर्दू के आरंभिक कवि और गद्य–लेखक उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में अधिक हुए हैं।

ब्रजभाषा गद्य के विकास पर दृष्टि डालते हुए गत पृष्ठों में बतलाया जा चुका है कि पुष्टि संप्रदाय की वार्ताओं द्वारा ही ब्रजभाषा गद्य का व्यवस्थित रूप बना था, जो उक्त संप्रदाय की संगठन शक्ति के क्षीण होने पर हीनावस्था को प्राप्त हो गया। अन्य क्षेत्रों में ब्रजभाषा गद्य का प्रचलन प्रायः टीकाओं आदि में हुआ था, जहाँ पर किसी व्यवस्थित शैली का कोई रूप कभी दिखलाई नहीं दिया। इस प्रकार अंगरेजी शासन की जड़ जमने के समय ब्रजभाषा गद्य का ह्रास हो रहा था और खड़ी बोली गद्य की उन्नति के आसार दिखलाई दे रहे थे।

अंगरेजी राज्य की स्थापना के कारण इस देश की राजनैतिक, सामाजिक और शिक्षा संबंधी स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगा। वैज्ञानिक आविष्कार और आधुनिक आवश्यकताओं के कारण सभी क्षेत्रों में प्रगति की पुकार सुनाई देने लगी। देश की सामूहिक प्रगति के लिए वहाँ की भाषा का प्रश्न सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, क्यों कि उसी के सहारे उन्नति की योजनाएँ कार्यान्वित की जा सकती हैं। जब सं० १८२९ में अंगरेजी राज्य की विधि पूर्वक स्थापना हो गई, तब शासन की दृढ़ता के लिए अंगरेजों को यहाँ की भाषा, रीति–रिवाज, और यहाँ के धर्म, इतिहास एवं आचार–विचार की पूरी जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। भारत के प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग के समय से ही उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए योजना बनने लगी, जिसकी पूर्ति लार्ड वेलेजली के समय में हुई। उन्होंने 'इंडियन सिविल सर्विस' की स्थापना कर अंगरेजी शासकों को यहाँ की जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के

लिए सं० १८५८ में कलकत्ता के सुप्रसिद्ध फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की गई। उक्त कालेज में पढ़ाने के लिए आवश्यक पाठ्य पुस्तकों की व्यवस्था का प्रश्न था। उसके लिए वहाँ पर एक ग्रंथ-निर्माण विभाग भी खोला गया। फारसी और हिंदी में शिक्षा की व्यवस्था करने तथा आवश्यक पुस्तकों की रचना कराने का कार्य जान गिलक्रिस्त नामक एक अध्यापक के सुपुर्द किया गया। जान गिलक्रिस्त साहब ने लल्लूजी लाल और सदल मिश्र को हिंदी की पुस्तकें लिखने के लिए नियत किया।

उस समय अध्यापक जान गिलक्रिस्त और उनके दोनों सहकारियों के सन्मुख यह प्रश्न था कि हिंदी के किस रूप में वे पुस्तकें लिखी जाँय। ब्रजभाषा अपने काव्य-साहित्य के कारण तो सर्वत्र प्रसिद्ध थी, किंतु उसका गद्य साहित्य पुष्टि संप्रदायी क्षेत्रों से बाहर उतना परिचित नहीं था। इसके विरुद्ध खड़ी बोली मुसलमानी शासन से संबंधित शिष्ट वर्ग के कार्य-व्यवहार की भाषा होने के कारण अंगरेजों के लिए भी सुपरिचित थी। इस प्रकार की खड़ी बोली उस समय 'रेख्ता' कहलाती थी। गिलक्रिस्त साहब ने लल्लूजी लाल से कहा—"ब्रजभाषा में कोई अच्छी कहानी हो, तो उसे रेख्ता की बोली में कहो।"

लल्लूजी लाल आगरा के रहने वाले गुजराती औदीच्य ब्राह्मण थे। उन्होंने जान गिलक्रिस्त के उक्त आदेशानुसार ब्रजभाषा की कई पुस्तकों के आधार पर खड़ी बोली गद्य में रचनाएँ कीं। लल्लूजी लाल ने सिंहासन बत्तीसी, वैताल पचीसी, माधोनल और प्रेमसागर आदि कई पुस्तकों की रचना की। उन समस्त पुस्तकों की मूल सामग्री संस्कृत में थी, किंतु लल्लूजी लाल संस्कृत के विद्वान न होने के कारण उक्त पुस्तकों की ब्रजभाषा कृतियों से सहायता लेने के लिए वाध्य थे। उनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रेम सागर' है, जो चतुर्भुज मिश्र कृत ब्रजभाषा ग्रंथ के आधार पर रची गई है। चतुर्भुज मिश्र ने सं० १६२४ में भागवत दशम स्कंध का ब्रजभाषा के दोहा-चौपाइयों में अनुवाद किया था। लल्लूजी लाल ने सं० १८६० में "विसका सार ले यामनी भाषा छोड़, दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह, नाम 'प्रेम सागर' धरा।" उसी समय जान गिलक्रिस्त साहब के विलायत चले जाने के कारण यह ग्रंथ अधूरा बना पड़ा रहा। बाद में सं० १८६६ में इसे पूरा कर कालेज के विद्यार्थियों के लाभार्थ छपवाया गया।

सदल मिश्र बिहार के रहने वाले ब्राह्मण थे। वे सं० १८५५ में कलकत्ता जाकर फोर्ट विलियम कालेज में नौकर हो गये। उन्होंने संस्कृत

ग्रंथ 'नासिकेतोपाख्यान' का हिंदी में अनुवाद किया और उसका नाम 'चंद्रावती' रखा, किंतु सदल मिश्र की यह पुस्तक 'नासिकेतोपाख्यान' के नाम से ही प्रसिद्ध है। यद्यपि ये दोनों पुस्तकें खड़ी बोली में रची गई थीं, किंतु चतुर्भुज मिश्र कृत ब्रजभाषा ग्रंथ के आधार पर रचना करने और आगरा निवासी होने के कारण लल्लूजी लाल के 'प्रेम सागर' में ब्रजभाषा का यथेष्ट प्रभाव है, किंतु सदल मिश्र की रचना खड़ी बोली में ही है।

यदि फोर्ट विलियम कालेज में खड़ी बोली के स्थान पर ब्रजभाषा गद्य को प्रश्रय दिया जाता, तब संभव है ब्रजभाषा गद्य के दिन फिर जाते और हिंदी गद्य साहित्य में ब्रजभाषा को भी आदरपूर्ण स्थान मिलता। यह ठीक है कि फोर्ट विलियम कालेज के अतिरिक्त अन्य स्थानों में भी उस समय खड़ी बोली गद्य की रचनाएँ होने लगी थीं। इसके प्रमाण के लिए पटियाला के रामप्रसाद निरंजनी, प्रयाग के मुंशी सदासुख लाल और लखनऊ के सैयद इंशा अल्लाहखाँ की कृतियाँ उपस्थित हैं, किंतु फोर्ट विलियम कालेज के प्रोत्साहन से ब्रजभाषा गद्य को एक वार फिर चल पड़ने का अवसर अवश्य मिलता। उस दशा में हिंदी गद्य के लिए एक मात्र खड़ी बोली इतनी सरलता पूर्वक स्वीकार नहीं कर ली जाती। जिस तरह पद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों की रचनाएँ होती हैं, उसी प्रकार गद्य के क्षेत्र में भी होतीं। किंतु ऐसा होने वाला नहीं था। ब्रजभाषा ने राज्याश्रय के बल पर कभी इतनी उन्नति नही की, जितनी उसने त्यागी संत–महात्माओं और कलाविद् गायक और कवियों की रचनाओं के कारण की है।

जो हुआ सो अच्छा ही हुआ, वरना हिंदी के आधुनिक विकास में एक उलझन पैदा हो जाती। ब्रजभाषा गद्य के कारण उस समय "भाषा संबंधिनी बड़ी विषम समस्या उपस्थित होती। जिस धड़ाके साथ गद्य के लिये खड़ी बोली ले ली गई, उस धड़ाके के साथ न ली जाती। कुछ समय सोच-विचार और वाद-विवाद में जाता और कुछ समय तक दो प्रकार के गद्य की धाराएँ साथ-साथ दौड़ लगातीं। अतः भगवान् का यह भी एक अनुग्रह समझना चाहिये कि यह भाषा-विप्लव नहीं संघटित हुआ और खड़ी बोली, जो कभी अलग और कभी ब्रजभाषा की गोद में दिखाई पड़ जाती थी, धीरे-धीरे व्यवहार की शिष्ट भाषा होकर गद्य के नये मैदान में दौड़ पड़ी †।"

इस प्रकार ब्रजभाषा गद्य के ध्वंसावशेषों पर उस खड़ी बोली हिंदी के गद्य का निर्माण हुआ, जो आज राष्ट्रभाषा के गौरवशाली पद पर प्रतिष्ठित है।

† आचार्य शुक्ल जी कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पृ० ३५३

खड़ी बोली गद्य के युग में भी वार्ताओं की रचना—

खड़ी बोली गद्य के प्रचलन के साथ अन्य क्षेत्रों में ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग रुक गया, किंतु पुष्टि संप्रदाय में वार्ताएँ लिखनेकी प्रणाली किसी न किसी रूप में प्रचलित रही, जिसके कारण वहाँ पर ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग बराबर होता रहा; किंतु यह गद्य पहली वार्ताओं के गद्य की अपेक्षा शक्तिशाली होने के बजाय शक्तिहीन है।

श्री द्वारकेश (गन्नू जी) ने सं० १८८० के लगभग 'सप्त स्वरूपोत्सव' नामक वार्ता की रचना की थी। यह वार्ता प्रकाशित हो चुकी है। सं० १९०० के लगभग श्री गोपिकालंकार (मट्टू जी) ने 'श्रीनाथ जी की सेवा विधि' और श्री गिरिधर लाल जी (चट्टू जी) ने '१२० वचनामृत' की रचना की थी। 'श्री गिरिधरलाल जी के १२० वचनामृत' छप चुके हैं। इन वचनामृतों की भाषा देखिये—

"या कीर्तन में दोय बात सिद्ध भई। एक तो श्रीठाकुर जी में तथा गुरुदेव में भिन्न भाव न करनो। और एक श्री गुरुदेव को अपराध न करनो। फेरि श्री गुसांई जी ने इनको श्राद्ध ध्रुव घाट पै करवायो, और कुंआ अधूरो हतो सो, पूरो करवायो। सो कुंआ कृष्णदास जी को ई बाजे है और वे रूख हूँ कुंआं के ऊपर है ताप बैठे रहते। सो कृष्णदास की वार्ता में प्रसिद्ध हे।"

—श्री गिरिधरलाल (सं० १९०० के लगभग)

श्री गोकुलाधीश जी (सं० १८७६–१९२५) और श्री गोवर्धनलालजी (सं० १९१९–१९७४) के वचनामृत भी आधुनिक काल के हैं, किंतु उनकी भाषा में पूर्व की अपेक्षा कोई उन्नति नहीं दिखलाई देती है। उदाहरण देखिये—

"पद्मनाभ दास जी के माथे श्री मथुरेश जी बिराजते सो तुलसां सों बहुत हिले। दिन भर तुलसां की गोद लोटे और अनेक तरह के तुलसां कूं सुख देते। ऐसे करत तुलसां बड़ी भई तब ब्याही तब तो तुलसां कूं लेवे कूं ससुरार तें आये। तब तुलसां कूं बड़ो सोच भयो। और कही जो यह देह श्री मथुरेश जी बिना कैसे रहेगी। महा चिंतातुर भई।"

—गोकुलाधीश जी के २५ वचनामृत (सं० १९०० के लगभग)

"फेरि एक समय श्री काका जी महाराज ने ऐसे आज्ञा करी जो आगे चौरासी दो सौ बावन कों ब्रह्म संबंध बेगहि होय जातो हतो और प्रभु सानुभाव भी जल्दी होय जाते हते ताको कारण यह जो वह जीव सारस्वत कल्प में मर्यादा पुष्ट मातृ चरण श्री गोपी तथा ग्वाल गोप हते ।"

—गोवर्धनलाल जी के ४२ वचनामृत (सं० १९५० के लगभग)

ब्रजभाषा गद्य का भविष्य—

पूर्वोक्त वार्ताओं और वचनामृतों के अतिरिक्त और भी अनेक वार्ताएँ और वचनामृत हैं। इनका सांप्रदायिक महत्व कुछ भी हो, किंतु इनका भाषा संबंधी महत्व इस समय नगण्य है। इन वार्ताओं और वचनामृतों के बल पर ब्रजभाषा गद्य के पुनरुद्धार की कल्पना करना व्यर्थ है। वस्तुतः ब्रजभाषा गद्य अब विगत युग की वस्तु हो गई है। उसे अब पुनः प्रचलित करने से कोई लाभ नहीं है।

जहाँ तक उसके प्राचीन साहित्य का संबंध है, उसका संरक्षण और अनुशीलन करना हमारा कर्त्तव्य है। उसके अनुशीलन से सत्रहवीं से बीसवीं शताब्दी तक की अनेक राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है, तथा उससे हिंदी के क्रमिक विकास की गति-विधि का ज्ञान होता है। इस प्रकार उसका ऐतिहासिक और भाषा संबंधी महत्व स्वयंसिद्ध है।

*

अष्टछाप-परिचय

[संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण]

इस अपूर्व ग्रंथ में हिंदी के महान् कवि महात्मा सूरदास और नंददास आदि अष्टछाप के आठों भक्त कवियों का आलोचनात्मक सचित्र जीवन-वृत्तांत और उनकी दुर्लभ रचनाओं का प्रामाणिक संकलन है। साथ में वल्लभ संप्रदाय का खोजपूर्ण विवरण भी है। कई वर्षों के अनुसंधान एवं गंभीर अध्ययन के उपरांत इस विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ की रचना हुई है।

एक प्रतिष्ठित पत्र की सम्मति—

"इसमें अष्टछाप-कवियों की आलोचना सहित सचित्र जीवनियाँ हैं और काव्य-संग्रह भी। वल्लभ संप्रदाय के आचार्यों की सचित्र चरित-चर्चा प्रथम परिच्छेद में है। इसी में शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टिमार्ग का विस्तृत विवेचन भी है। दूसरे परिच्छेद में अष्टछाप के स्थापना-काल, महत्व और क्रम तथा वार्ता-साहित्य पर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। तृतीय परिच्छेद में अष्टछाप के आठों कवियों की आलोचनात्मक जीवनियाँ और चुनी हुई कविताएँ हैं। चतुर्थ में अष्टछाप के गीति-काव्य और संगीत-पद्धति का समीक्षात्मक प्रदर्शन किया गया है। अंत के पंचम परिच्छेद में अष्टछाप का सिंहावलोकन है। सब के अंत में पुस्तक-गत नामों, ग्रंथों, स्थानों और पदों की अक्षरानुक्रमणिका है।

इस प्रकार यह पुस्तक घोर परिश्रम एवं अनवरत अनुसंधान के परिणाम स्वरूप अतीव सुंदर बन पड़ी है।....पुस्तक के प्रत्येक प्रसंग से लेखक की गहरी छानबीन का पता चलता है। इस पुस्तक से साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई है।...हम लेखक के इस सत्प्रयास एवं अथक अध्यवसाय का हार्दिक अभिनंदन करते हैं।"

—"हिमालय" पटना (जनवरी १९४८)

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त धुरंधर विद्वानों की सम्मतियाँ—

"यह पुरानी हिंदी के साहित्य तथा मध्यकालीन भारत की धार्मिक संस्कृति पर प्रकाश डालने वाली विशेष महत्वपूर्ण पुस्तक है। पुराने हिंदी साहित्य की आलोचना में आपकी यह देन प्रथम श्रेणी की है। सद्भाव, पांडित्य और श्रम से की हुई इस गवेषणा का अपना विशिष्ट स्थान है। इसके लिए मैं न केवल आपको, परंतु हिंदी-प्रेमी समाज को और हिंदी संसार को बधाई देता हूँ।"

कलकत्ता, —सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

ता० २७-१-४८ (अध्यक्ष—तुलनात्मक भाषा विज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

"श्री मीतल जी की अष्टछाप-परिचय पुस्तक ब्रजभाषा के आदिम आठ महाकवियों पर गंभीर कृति है। इसमें कवियों और उनके संरक्षकों की जीवनियों पर अच्छा प्रकाश डालते हुए, उनकी कविताओं का भी सुंदर संग्रह किया गया है। अपने ढंग का यह एक बहुत अच्छा और गंभीर प्रयत्न है। ऐसी अच्छी पुस्तक लिखने के लिए मीतल जी को बधाई!"

—राहुल सांकृत्यायन

ता० ३१-१-४८ (भू० पू० अध्यक्ष—हिंदी साहित्य संमेलन)

बड़े आकार के ४०० पृष्ठ, सुंदर छपाई, १२ चित्र, दुरंगी कवर, पक्कीजिल्द, मू० ५

ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद

(यू० पी० सरकार द्वारा पुरस्कृत । परिवर्धित एवं परिष्कृत द्वितीय संस्करण)

भूमिका लेखक—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, अध्यक्ष–इतिहास विभाग, प्रयाग वि० वि०

यह अपने विषय की हिंदी में एक मात्र रचना है। इससे लेखक का गंभीर साहित्यिक ज्ञान, उसकी अध्यवसायपूर्ण शोध और संकलन की सुरुचि प्रकट है।

प्रतिष्ठित पत्रों एवं विख्यात विद्वानों की सम्मतियाँ—

"लेखक ने इसके निर्माण में काफ़ी परिश्रम और ब्रजभाषा साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया है।....समस्त प्राप्त सामग्री और विचारों का समन्वय कर लेखक ने नायिका-भेद के विभिन्न विषयों के संबंध में एक निश्चित और निर्भ्रांत मत स्थिर करने की चेष्टा की है। उदाहरणों के संग्रह में भी उसने कठिन परिश्रम और सुंदर साहित्यिक रुचि का परिचय दिया है।" —"सरस्वती" प्रयाग.

"विद्वान् लेखक ने रीति–कविता का संक्षिप्त इतिहास और नायिकाभेद पर विस्तृत प्रकाश डाला है। अनेकों आचार्यों ने जो क्रम इस संबंध में उपस्थित किया है, उस पर लेखक ने गंभीरता से अपने विचार व्यक्त किये हैं और अंत में एक वैज्ञानिक क्रम निश्चित करके नायिकाओं के लक्षण और उनके चुटीले उदाहरण उपस्थित किये हैं। यह संतोष की बात है कि उदाहरण अश्लील नहीं हैं और पुस्तक ब्रजभाषा में साहित्य के एक अभाव को पूरा करने में सफल हुई है।" —"हिन्दुस्तान", दिल्ली.

"There is no doubt the author has made a sincere and conscientious effort to give an exhaustive exposition of the subject. We are sure the book will prove entertaining to lovers of Hindi poetry and helpful to students interested in its systematic study."

—"**LEADER**", *ALLAHABAD*

"आपने पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी है और निस्संदेह इससे साहित्य के विद्यार्थियों का बड़ा उपकार होगा।" —अमरनाथ झा

प्रयाग, १६-१२-४४ (वायस चांसलर - इलाहाबाद विश्व-विद्यालय)

"निस्संदेह इस पुस्तक को प्रस्तुत करने में आपने श्रम, शोध, निर्णय शक्ति और सहृदयता का पूर्ण उपयोग किया है।" —केशवप्रसाद मिश्र

बनारस, २७-१२-४४ (अध्यक्ष–हिंदी विभाग, हिंदू विश्व-विद्यालय)

"नायिका निरूपण पर हिंदी में कोई स्वतंत्र पुस्तक अभी तक नहीं थी। आपने समस्त सामग्री को एक सूत्र में एकत्रित कर विद्यार्थियों तथा अध्यापकों का उपकार किया है।"

—धीरेन्द्र वर्मा

प्रयाग, २८-११-४४ (अध्यक्ष–हिंदी विभाग, इलाहबाद विश्व-विद्यालय)

"आपने बड़े परिश्रम से अपने विषय का प्रतिपादन किया है।....आपकी पुस्तक ने इस ओर महत्वपूर्ण सामग्री दी है।" —हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

बोलपुर, ६-१०-४६ (अध्यक्ष–हिंदी भवन, शान्ति निकेतन)

"लेखक ने इस ग्रंथ के लिखने में बहुत परिश्रम किया है। इसमें नायिकाभेद विषयक बहुमूल्य और दुष्प्राप्य सामग्री है। ग्रंथ उपयोगी है और लेखक वास्तव में बधाई का पात्र है।" —दीनदयालु गुप्त

लखनऊ, १०-११-४८ (अध्यक्ष–हिंदी विभाग, लखनऊ विश्व-विद्यालय)

बड़े आकार के ४५६ पृष्ठ, सुंदर छपाई, दुरंगी कवर, पक्की जिल्द, मू० ६)

ब्रज-साहित्य-माला सं० ३

सूर-निर्णय

परिचय लेखक—डा० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष—हिंदी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय.

यह सूर-साहित्य की नवीनतम कृति है, जिसमें महाकवि महात्मा सूरदास के जीवन, ग्रंथ, सिद्धांत और काव्य की निर्णयात्मक समीक्षा की गयी है। लेखकों ने ब्रजभाषा साहित्य और पुष्टि संप्रदाय के धर्म ग्रंथों की कई वर्षों तक शोध करने के अनंतर इस महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में सूर संबंधी नवीनतम सामग्री का समावेश है, जिसे अवलोकन किये बिना किसी भी व्यक्ति का सूरदास विषयक अध्ययन पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस ग्रंथ की मान्यताओं ने हिंदी साहित्य में क्रांति उत्पन्न करदी है।

अनुसंधान, अध्ययन, आलोचना और संकलन सभी दृष्टियों से इस ग्रंथ का सूर-साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान है। यह ग्रंथ पाँच बड़े-बड़े अध्यायों में समाप्त हुआ है—
१. सामग्री-निर्णय, २. चरित्र-निर्णय, ३. ग्रंथ-निर्णय, ४. सिद्धांत निर्णय ५. काव्य-निर्णय

प्रतिष्ठित पत्रों एवं विख्यात विद्वानों की सम्मतियाँ—

"हिंदी साहित्य में जहाँ तक सूर विषयक गवेषणात्मक अध्ययन एवं वाद-विवाद का प्रश्न है, 'सूर-निर्णय' का प्रकाशन एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है। सूर-साहित्य में अभिरुचि रखने वाले प्रत्येक विद्यार्थी तथा साहित्यिक के लिए इस विषय पर नवीन दृष्टिकोण से विचार करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक से परिचित होना अपेक्षित ही नहीं अनिवार्य भी है।

—"संगम", प्रयाग

"सूर-निर्णय में बहुत कुछ नवीन विचार एवं खोजपूर्ण साहित्य है। सूरदास के अध्ययन करने वाले साहित्य प्रेमियों के लिए यह अति उत्तम पुस्तक प्रमाणित होगी, इसमें संदेह नहीं।"

—"नवयुग", दिल्ली

"सूर संबंधी बहुत से विवादग्रस्त विषयों पर आपके निर्णय मौलिक एवं यथार्थ हैं। वे बहुत से अंधकारावृत स्थलों पर प्रकाश डालते हैं।"

—राहुल सांकृत्यायन (भू० पू० अध्यक्ष हिंदी साहित्य संमेलन)

"पुस्तक बहुत उपयोगी जान पड़ी। आपने सूर-साहित्य संबंधी सभी उपयोगी सामग्रियों का संकलन कर दिया है। इस सुंदर पुस्तक के लिए आपको हार्दिक बधाई !"

"अब तक सूरदास जी पर जो कुछ लिखा गया है, उसके पढ़ लेने पर भी आपकी पुस्तक के बिना तत्संबंधी आकांक्षा की पूर्ति न हो सकेगी। एतदर्थ अनेक धन्यवाद !"

—विश्वनाथप्रसाद मिश्र (हिंदी विभाग, हिंदू विश्वविद्यालय)

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (हिंदी भवन, शांति निकेतन, बंगाल)

"सूर-निर्णय ग्रंथ लिखकर आपने अत्यंत सराहनीय कार्य किया है। पुष्टिमार्गीय संप्रदाय की अंतरंग बातों को प्रकाश में लाकर आपने कई गुत्थियों को सुलझा दिया है। ऐसे उपयोगी ग्रंथ को प्रकाशित करने के कारण आप हम सब की बधाई के पात्र हैं।"

—मुंशीराम शर्मा (डी० ए० वी० कालेज, कानपुर)

बड़े आकार के ३८० पृष्ठ, सुंदर छपाई, दुरंगी कवर, पक्की जिल्द, मूल्य ५)

ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु-सौन्दर्य

[प्रस्तावना लेखक-महापंडित राहुल सांकृत्यायन भू० पू० अध्यक्ष, हिंदी साहित्य संमेलन]

इस अपूर्व ग्रंथ में ब्रजभाषा काव्य के सुप्रसिद्ध महाकवियों की षट् ऋतु विषयक सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संकलन किया गया है। ब्रजभाषा के भक्ति कालीन महात्माओं ने संगीत-सौष्ठव द्वारा और रीति कालीन कवियों ने काव्य-कौशल द्वारा षट् ऋतुओं का भावपूर्ण एवं चमत्कारिक वर्णन किया है। ब्रजभाषा के षट् ऋतु विषयक साहित्य में प्रकृति-निरीक्षण, सौन्दर्योपासना एवं संयोग-वियोगात्मक शृंगारिक भावना का अपूर्व संगम है, जिसके प्रदर्शन के लिए सैकड़ों कवियों ने समय-समय पर सहस्रों कविताओं की रचनाएँ की हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना के समय षट् ऋतु विषयक विशाल साहित्य एकत्रित किया गया, जिसकी चुनी हुई ६६१ परमोत्कृष्ट रचनाएँ इस ग्रंथ में संकलित की गयी हैं। इस प्रकार यह अपने विषय का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। प्रत्येक ऋतु के आरंभ में उसका साहित्यिक परिचय दिया गया है, जिसके कारण संकलन की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। प्रस्तावना में भारत के प्रसिद्ध विद्वान महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी ने ब्रजभाषा काव्य की षट् ऋतु विषयक रचनाओं के मूल स्रोत अपभ्रंश की कविताएँ उद्धृत की हैं, जिनके कारण इस पुस्तक का और भी महत्व बढ़ गया है।

षट् ऋतुओं का ऐसा बढ़िया एवं सुसंपादित संकलन हिंदी साहित्य में प्रथम बार प्रकाशित हुआ है।

बड़े आकार के प्रायः ३०० पृष्ठ, सुंदर छपाई, दुरंगी कवर, पक्की जिल्द, मूल्य केवल ४)

'ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु-सौन्दर्य' पर महत्वपूर्ण सम्मतियाँ—

"इस ऋतु विषयक ब्रज-साहित्योदधि का मंथन कर आपने जिन रत्नों का संकलन इस पुस्तक में किया है, वे न केवल ब्रजभाषा साहित्य के सौन्दर्य एवं सरसता के द्योतक हैं, अपितु उनके द्वारा हमें ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवियों की ऋतु संबंधी मनोहर रचनाओं का एकत्र रसास्वादन मिल जाता है। ऐसे सुंदर संग्रह के लिए आपको हार्दिक बधाई।"

—कृष्णदत्त वाजपेयी

(भू० पू० संग्रहाध्यक्ष पुरातत्व संग्रहालय, वर्तमान पुरातत्व अधिकारी, उत्तर प्रदेशीय सरकार)

"संकलनकर्ता ने आरंभ में अपने शब्द में ऋतु का परिचय दिया है, फिर विविध शीर्षकों में ऋतु-वर्णनों का संकलन। संकलन सुंदर है, ... वैविध्य का ध्यान विशेष रखा गया है। राहुल सांकृत्यायन की भूमिका ने तो और भी चार-चाँद लगा दिये हैं।"

—"साहित्य संदेश", आगरा (फरवरी १९५१)

ब्रज-साहित्य-माला सं० ५

आलोचना व निबन्ध

गो० श्री हरिराय जी कृत

सूरदास की वार्ता

★

सं० १७५२ में लिपिबद्ध एक प्राचीन प्रति से प्रस्तुत वार्ता संकलित की गई है। इससे वार्ता साहित्य के प्रमुख संपादक श्री हरिराय जी के शब्दों में ही सूरदास का प्राचीन एवं प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत ज्ञात हो सकेगा। इस पुस्तक की पाद-टिप्पणियों में विषय के स्पष्टीकरण के साथ ही साथ ठेठ ब्रजभाषा शब्दों का अर्थ भी दिया गया है, जिससे संपादन का महत्व बढ़ गया है।

सं० १७५२ के ब्रजभाषा गद्य का आदर्श रूप उपस्थित करने के लिए इस पुस्तक का पृथक् महत्व है। परिशिष्ट में ब्रजभाषा गद्य के विकास और ह्रास का विद्वतापूर्ण इतिहास बतलाया गया है। सूरदास के प्रामाणिक जीवन वृत्तांत और ब्रजभाषा गद्य की प्राचीन रचना होने के कारण यह पुस्तक सूर-चरित्र के अन्वेषकों एवं उच्च हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के बड़े काम की है। पुस्तक में हरिराय जी, वल्लभाचार्य जी और सूरदास जी के प्रामाणिक चित्र भी हैं।

बड़े आकार के १०२ पृष्ठ, सुंदर छपाई, दुरंगा आवरण, सचित्र एवं सजिल्द, मूल्य १।।)

ब्रज-साहित्य-माला सं० ६

सूर-विनय-पदावली

★

भक्ति-भारती के अमर गायक महात्मा सूरदास अपनी वात्सल्य एवं शृंगार रस की रचनाओं के कारण तो विख्यात हैं ही, किंतु उनकी विनयपूर्ण पदावली भी हिंदी साहित्य में बे जोड़ है। इन पदों में सूरदास ने परमात्मा के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण करते हुए उनसे अपने उद्धार की अत्यंत दीनता पूर्वक विनय की है। प्रस्तुत पुस्तक में विनय, दीनता, पश्चात्ताप, वैराग्य, आत्म ज्ञान, माया, अविद्या, आत्म प्रबोध, भक्त-वत्सलता, नाम-महिमा आदि के २८० पदों का संकलन किया गया है, जिनसे पाठकों के हृदय में सात्विक भावों का उदय होता है।

पुस्तक में तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में सूरदास का संक्षिप्त जीवन-वृत्तांत और विनय-पदावली की पृष्ठभूमि का वर्णन है। दूसरे अध्याय में विनय के पदों का संकलन है। तीसरे अध्याय में सूर-विनय का शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक विवेचन है। इस प्रकार यह पुस्तक सूर-साहित्य का अध्ययन करने वालों, भावुक भक्तों और काव्य-प्रेमियों के लिए एक अत्यंत उपयोगी रचना है।

बड़े आकार के १२५ पृष्ठ, सुंदर छपाई, दुरंगा आवरण, सचित्र एवं सजिल्द, मूल्य १।।)

ब्रजभाषा-काव्य के प्रेमियों

तथा

उच्च हिंदी-कक्षाओं के विद्यार्थियों

के लाभार्थ—

ब्रज-साहित्य-माला की पुस्तकें

[लेखक—प्रभुदयाल मीतल]

★

१. अष्टछाप-परिचय [परिवर्द्धित संस्करण] ५)

२. ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद

[परिवर्द्धित संस्करण] ६)

३. सूर-निर्णय - - ५)

४. ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु-सौंदर्य ४)

५. सूरदास की वार्ता - - १॥)

६. सूर-विनय-पदावली - - १॥)

★

प्राप्तव्य स्थान :

अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।

मुद्रक, प्रकाशक : प्रभुदयाल [illegible]ल, अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन, मथुरा ।